वर्ष–4, अंक–1
इंटरनेट संस्करण : 88

पत्रिका गर्भनाल

प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका

ISSN 2249–5967
मार्च 2014

पत्रिका

गर्भनाल

वर्ष-4, अंक-1 (इंटरनेट संस्करण : 88)
मार्च 2014

सम्पादकीय सलाहकार
गंगानन्द झा

परामर्श मंडल
वेद मित्र, एम.बी.ई., यू.के.
डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, ऑस्ट्रेलिया
अनिल जनविजय, रूस
अजय भट्ट, बैंकाक
देवेश पंत, अमेरिका
उमेश ताम्बी, अमेरिका
आशा मोर, ट्रिनिडाड
डॉ. अनिल विद्यालंकार, भारत
डॉ. ओम विकास, भारत

सम्पादक
सुषमा शर्मा

तकनीकि सहयोग
डॉ. राजीव यादव, न्यूयार्क

आकल्पन सहयोग
डॉ. बृजेश तिवारी, लखनऊ

कम्पोजिंग
प्रताप परिहार

कानूनी सलाहकार
संजीव जायसवाल

सम्पर्क
डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी,
जे.के. रोड, भोपाल-462023 (म.प्र.) भारत.
ईमेल : garbhanal@ymail.com

आवरण छायाचित्र
मानस शर्मा

प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, जरूरी नहीं है कि सम्पादक इससे सहमत हों. विवाद की स्थिति में केवल भोपाल न्यायालय क्षेत्र ही रहेगा.

>>7
ऑस्ट्रेलिया में हिन्दी

>>11
आह! अमेरिका, वाह! अमेरिका

>>21
आखिर ये लोग कौन हैं?

>>23
एक बेचारा शर्म का मारा

इस अंक में

अपनी बात :	गंगानन्द झा	2
मन की बात :	डॉ. अमरनाथ	4
	डॉ. दिनेश श्रीवास्तव	7
संस्मरण :	यशवन्त कोठारी	11
विचार :	रेखा भाटिया	13
जन्नत की हकीकत :	रमेश जोशी	15
चीन की डायरी :	डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा	17
परख :	प्रभु जोशी	19
नजरिया :	उदयन वाजपेयी	21
हमारा समय :	ध्रुव शुक्ल	23
रम्य-रचना :	सुधा दीक्षित	25
चिन्तन :	ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव	28
व्याख्या :	मनोज कुमार श्रीवास्तव	32
मंथन :	भूपेन्द्र कुमार दवे	36
पंचतंत्र :		38
महाभारत :		39
वेद की कविता :	प्रभुदयाल मिश्र	41
गीता-गीत :	परेश दत्त द्वारी	42
कविता :	डॉ. सरोज अग्रवाल	43
	विनीता खंडेलवाल	44
	मञ्जूषा हांडा	45
	श्रीमती आशा मोर	46
	शकुन्तला बहादुर	47
	उमेश ताम्बी	48
	ललिता प्रदीप	49
	नीलम दीक्षित	50
	नीरज कुमार 'नीर'	51
	अरविन्द कुमार पाठक	52
शायरी की बात :	नीरज गोस्वामी	53
आपकी बात :		54
आख़िरी बात :	आत्माराम शर्मा	55

हमारे जीवनस्तर में आशातीत प्रगति हुई है। इसके साथ ही हमारी आयु में भी काफी वृद्धि हुई है। इस प्रगति का एक अन्तर्विरोध भी है, जो कवि की इस पंक्ति द्वारा व्यक्त होता है— 'मैं स्वर्ग का निर्माण करूँगा। यद्यपि वहाँ से निर्वासन ही मेरी नियति होगी।' आज बुजुर्ग लोग अपने आपको अधिक अप्रासंगिक पा रहे हैं और उसी के साथ अवसाद से ग्रसित होने के खतरे से निरन्तर जूझना उनकी नियति होती जा रही है।

बुजुर्गों की प्रासंगिकता सभ्यता के बदलते स्वरूप के साथ बदलती रही है। कृषि आधारित एवम् कबीलाई समाजों में उनकी प्रासंगिकता सर्वोपरि थी। प्रकृति और परिवेश के रहस्यों के सम्बन्ध में अपनी जानकारियों और तजुर्बों की बदौलत वे पूरे कबीले के लिए सही मायनों में जानकारी के भण्डार और पथप्रदर्शक हुआ करते थे। सम्पत्ति का मालिकाना बुजुर्गों को हुआ करता था। लिखित जानकारियों की उपलब्धता की कमी के कारण किसी संकट का मुकाबला करने तथा योजना बनाने में बुजुर्गों की भूमिका अपरिहार्य हो जाती थी।

मोटे तौर पर मानव सभ्यता के विकास के इतिहास को कृषि आधारित, उद्योग और फिर प्रौद्योगिकी आधारित समाज व्यवस्था में वर्गीकृत किया जा सकता है। बुजुर्गों की प्रासंगिकता में परिवर्तन इन विभिन्न चरणों के साथ होता रहा है। कृषि पर आधारित समाज व्यवस्था से उद्योग पर आधारित समाज में संक्रमण के परिणाम मानव समाज के लिए क्रान्तिकारी रहे हैं। आयु में अत्यधिक वृद्धि हुई है पर समाज की स्थिरता नष्ट हो गई है, पर्यावरण का विनाश अधिक तेजी से हुआ है। जीवन की सफलता और सार्थकता का समीकरण विवादास्पद होता गया है।

औद्योगिकीकरण ने परिवार के पारम्परिक ताने-बाने को तितिर-बितिर कर दिया है। परिवार उत्पादन की इकाई हुआ करता था, जिसके सदस्य पारस्परिक लाभ के लिए आपस में मिलकर काम करते थे। परिवार के ढाँचे के बगैर जीवित रहना काफी कठिन हुआ करता था।

प्रजातान्त्रिक विचारधारा ने भी बुजुर्गों की प्रासंगिकता को प्रभावित किया है। इस विचारधारा में व्यक्ति के अधिकार को परिवार और समाज के प्रति जिम्मेदारियों के ऊपर प्राथमिकता दी जाती है। अब पिता उस प्रकार परिवार का मुखिया नहीं होता जैसा कि कृषिभित्तिक समाज में हुआ करता था। माता-पिता अपनी वयस्क सन्तानों के जीवन में असंगत हैं। प्रौद्योगिकी ने उत्पादन की इकाई के रूप में परिवार की भूमिका नष्ट कर दी है।

रंगमंच पर एक अभिनेता केन्द्रीय भूमिका का निर्वाह करता रहता है, सारे घटना-चक्र के केन्द्र में रहता है फिर उसकी भूमिका गौण होने लगती है; एक समय आता है, जब रंगमंच के एक किनारे पर आकर वह ओझल हो जाने लगता है। प्रौढ़ावस्था प्रस्तुति की बेला है। मुख्य भूमिका से गौण भूमिका की ओर खिसकने की; रंगमंच के केन्द्र से क्रमशः क्षीण और धूमिल होते हुए पार्श्व में आने की। यह संक्रमण बड़ा कठिन होता है, बड़ी यन्त्रणा होती है इसमें।

उपलब्ध कराने की भरसक कोशिश की जाती है। इनमें पारम्परिक लगाव तो नहीं होता, पर जिम्मेदारी टालने और बहानेबाजी की बात भी नहीं होती। उनकी नौकरी इसी काम के लिए होती है। ओल्ड एज होम की संस्कृति के लिए अभी हमारे देश में सम्मान एवम् स्वीकृति नहीं है। हम इसे एक अनिवार्य बुराई के रूप में देखते हैं।

स्थिर समाज में परम्परा समाज, परिवार और व्यक्ति की आचार संहिता की रूपरेखा तय करती है। आधुनिकता ने परम्परा को असंगत बना दिया है। पारम्परिक संरचनाएँ, मूल्य बोध, आचार-संहिता अब असंगत हो गई हैं। उपभोक्तावादी आधुनिक समाज के मूल्य-बोध में रिश्ते रैखिक (linear) आयाम में सज्जित होते हैं। इस प्रणाली में परिवार तथा समाज के अनुत्पादक सदस्यों की कोई अहमियत नहीं हुआ करती। इसके विपरीत प्राच्य समाज के मूल्य-बोध में रिश्ते चक्रीय (cyclic) आयाम लिए हुआ करते थे। सामाजिक ऋण की अवधारणा सामाजिक चेतना के केन्द्र में स्थित थी। मातृ-ऋण, पितृ-ऋण, गुरु-ऋण की अवधारणाएँ इसके दृष्टान्त हैं। किन्तु आधुनिकता के ढाँचे ने इस मूल्य-बोध को तराश लिया गया है। बुजुर्गों को सीनियर सिटिजन के विशेष वर्ग में चिह्नित किया गया है और इनके कुछ विशेषाधिकार स्वीकृत किए गए हैं। ओल्ड एज होम को प्रोन्नत किया जा रहा है, जहाँ सामान्य सुविधाओं के साथ चिकित्सा एवम् मनोरंजन की नियमित उपलब्धि का आश्वासन होता है। कुछ लोग, जो अपने को नई परिस्थिति में अनुकूलित करने में असमर्थता महसूस करते हैं, अवांछित होने के दंश से मुक्त नहीं हो पाते। एक चीनी जुमला है, अकेलेपन से बचने के लिए जरूरत है कि 'कोई हमें वांछित होने का एहसास दिलाता हो, करने के लिए काम हो तथा आशा करने के लिए कुछ हो।' अवसाद के शिकार होने से बचने के लिए इण्टरनेट जैसी आधुनिक प्रौद्योगिकी ने अनेकों उपादान उपलब्ध किए हैं, जो अकेला हो गए लोगों को अकेलेपन की यन्त्रणा से बचाते ही नहीं, उनको नया सन्दर्भ, नई उपलब्धियाँ देते हैं।

आधुनिकता अपनों को पराया करती है तो इण्टरनेट परायों को अपना बनाने का जरिया है। अशरीरी उपस्थिति आज की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। हम वेब पत्रिकाओं, मोबाइल, स्काइप जैसे साधनों के जरिए अदेखे लोगों के साथ भी घनिष्ठ और उपयोगी सरोकार कायम कर सकते हैं। यों भी सामान्यतः हमारा अनुभव है कि जीवन-पथ के सफर में परायों से जितना स्नेह, समर्थन, सम्मान और स्वीकृति मिलती है, उतना तथाकथित अपनों से नहीं।■

"ओल्ड एज होम की संस्कृति के लिए अभी हमारे देश में सम्मान एवम् स्वीकृति नहीं है। हम इसे एक अनिवार्य बुराई के रूप में देखते हैं।"

अपनी अस्मिता पर प्रश्न लगता दिखता है; अहंकार, अभिमान तथा स्वीकृति के प्रश्न बड़ी प्रखरता से उभड़ते होते हैं। कितने दायित्व अधूरे रहे होते हैं, कितने स्वप्न, कितनी योजनाएँ अभी प्रतीक्षा करती हुई लगा करती हैं। लगता है कि हम ही उन्हें पूरा कर सकते हैं, हमें पूरा करना ही चाहिए। मान लेना कि अब हमारी भूमिका समाप्त हो गई है, हम अप्रासंगिक हो गए हैं— आसान नहीं होता। जब आप समझ रहे होते हैं कि आपके स्नेहास्पद का आपके प्रति संवेदनहीनता प्रदर्शित किया करना उसकी कुण्ठाओं और विकृतियों के कारण है— तभी आप उसके प्रति अपनी करुणा और स्नेह से विचलित होने से अपने आप को रोक पाते हैं ।

प्रासंगिकता कायम रखने में प्रवृत्ति, प्रयोजन, प्ररोचना और प्रतिदान की भूमिका होती है। प्रवृत्ति सन्तान को प्रासंगिकता देती है, पर बुजुर्गों को नहीं। आधुनिकता के व्याकरण ने उनकी प्रयोजनीयता पर करारा आघात किया है। अपने से अधिक सशक्त, सम्पन्न एवम् आत्मनिर्भर सन्तान को प्ररोचित कर पाने की उनकी क्षमता सीमित हुआ करती है। प्रतिदान की जमीन विवेक के द्वारा बनाई जाती है। प्रतिदान के स्वरूप को सुविधा के अनुसार निर्धारित करने के लिए आधुनिक मन ने विवेक को तराश कर काफी लचीला बना लिया है।

विवेक की ताड़ना से आज सीनियर सिटिजन के लिए कुछ विशेषाधिकारों का प्रावधान किया गया है, ओल्ड एज होम स्थापित किए गए हैं, जहाँ पेशेवर लोगों द्वारा नियमित चिकित्सा तथा मनोरंजन के साथ हर प्रकार की सुविधा

ganganand.jha@gmail.com

डॉ. अमरनाथ

१९५४ में रामपुर बुजुर्ग, गोरखपुर में जन्म. गोरखपुर विश्वविद्यालय से एम.ए. और पी-एच.डी की उपाधियां प्राप्त. एक दर्जन से अधिक आलोचना की पुस्तकें प्रकाशित. हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बीच सेतु निर्मित करने एवं भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा के उद्देश्य से संचालित अपनी भाषा संस्था की पत्रिका 'भाषा विमर्श' का संपादन. संप्रति - कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर और भारतीय हिन्दी परिषद् के उपसभापति.

सम्पर्क : ईई-१६४ / ४०२, सेक्टर-२, साल्टलेक, कोलकाता-७०००९१ ई-मेल : amarnath.cu@gmail.com

जातीय भाषा हिन्दी और उसकी बोलियाँ

हिन्दी जाति दुनिया की सबसे बड़ी जातियों में से एक है। वह दस राज्यों में बाँट दी गयी है। इन दस राज्यों में औपचारिक काम-काज की भाषा हिन्दी है। यह हमारी अर्जित भाषा है जिसे हमने मातृभाषा की तरह सीख लिया है। हम सरकारी कार्यालयों से लेकर लिखने- पढ़ने तक का सारा औपचारिक कामकाज इसी हिन्दी में करते हैं। इसके पास लगभग चार दर्जन बोलियां हैं। इन बोलियों की भी उपबोलियां है। इन बोलियों में लिखा जाने वाला साहित्य हिन्दी साहित्य का ही एक हिस्सा है। यह हिन्दी जाति का साहित्य है।

आज भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी, कुमायूनी, गढ़वाली, हरियाणवी आदि हिन्दी की बोलियां, हिन्दी से अलग होकर संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल होने की मांग कर रही हैं। हिन्दी जाति के लिए यह गंभीर चिन्ता का विषय है।

मैं बंगाल में रहता हूँ। बंगाल की दुर्गा पूजा मशहूर है। जब भी दुर्गा का मिथक मेरे सामने आता है, मुझे उसमें हिन्दी की छवि झिलमिलाती हुई नजर आती है। दुर्गा बनी कैसे? महिषासुर से त्रस्त सभी देवताओं ने अपने-अपने तेज दिए थे- अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्/एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा। अर्थात् सभी देवताओं के शरीर से प्रकट हुए उस तेज की कहीं तुलना नहीं थी। एकत्रित होने पर वह एक नारी के रूप में परिणत हो गया और अपने प्रकाश से तीनो लोकों में व्याप्त हो गया। तब जाकर महिषासुर का वध हो सका।

> हिन्दी भी ठीक दुर्गा की तरह है। जैसे सारे देवताओं ने अपने-अपने तेज दिए और दुर्गा बनी वैसे ही सारी बोलियों के समुच्चय का नाम ही हिन्दी है।

हिन्दी भी ठीक दुर्गा की तरह है। जैसे सारे देवताओं ने अपने-अपने तेज दिए और दुर्गा बनी वैसे ही सारी बोलियों के समुच्चय का नाम ही हिन्दी है। यदि सभी देवता अपने-अपने तेज वापस ले लें तो दुर्गा खत्म हो जाएगी वैसे ही यदि सारी बोलियाँ अलग हो जायँ तो हिन्दी के पास बचेगा क्या? हिन्दी का अपना क्षेत्र कितना है? वह दिल्ली और मेरठ के आसपास बोली जाने वाली कौरवी से विकसित हुई है। हम हिन्दी साहित्य के इतिहास में चंद बरदाई को पढ़ते हैं जो राजस्थानी

> जो लोग बोलियों के हित की वकालत करते हुए अस्मिताओं के उभार को जायज ठहरा रहे हैं वे अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ा रहे हैं, खुद व्यवस्था से साँठ-गाँठ करके उसकी मलाई खा रहे हैं।

के हैं, सूर को पढ़ते हैं जो ब्रजी के हैं, तुलसी को पढ़ते हैं जो अवधी के हैं, कबीर को पढ़ते हैं जो भोजपुरी के हैं और विद्यापति को पढ़ते हैं जो मैथिली के हैं। इन सबको हटा देने पर हिन्दी साहित्य में बचेगा क्या?

यह सही है कि इन बोलियों में लिखने वाले सहित्यकारों को आज वह गौरव हासिल नहीं हो पा रहा है जो अवधी के तुलसी, ब्रजी के सूर, राजस्थानी के चंद बरदाई, मैथिली के विद्यापति और भोजपुरी के कबीर को हासिल है। लेकिन इसके कारण भी हैं। आज इन बोलियों के क्षेत्र में रहने वाले बड़े साहित्यकार आम तौर पर खड़ी बोली हिन्दी में ही लिख रहे हैं क्योंकि आज हिन्दी इस देश की राज भाषा बन चुकी है और इस भाषा में लिखने से करोड़ों पाठक सहज ही मिल जाते है। इस देश की पचास करोड़ आबादी तक सहज ही पहुँच पाने के लोभ से अपने को कैसे रोका जा सकता है?

ऐसी दशा में बोलियों मे रचे जाने वाले साहित्य को मुख्यधारा में लाने और पाठकों तक पहुँचाने का एक रास्ता यह है कि क्षेत्रीय स्तर के विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में उन्हें रखा जाय ताकि अपने क्षेत्र के साहित्य से छात्र परिचित हो सकें। इस तरह के प्रयोग कई विश्वविद्यालयों ने किया भी है। गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी पाठ्यक्रम में निर्धारित 'पुरइन पात' नामक भोजपुरी काव्य संकलन मैंने देखा है जिसमें गोरखनाथ से लेकर गोरख पाण्डेय तक की रचनाएं संकलित हैं। इस तरह के प्रयोग प्रशंसनीय हैं।

जो लोग बोलियों के हित की वकालत करते हुए अस्मिताओं के उभार को जायज ठहरा रहे हैं वे अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ा रहे हैं, खुद व्यवस्था से साँठ-गाँठ करके उसकी मलाई खा रहे हैं और अपने आस-पास की जनता को जाहिल और गँवार बनाए रखना चाहते हैं ताकि भविष्य में भी उन पर अपना वर्चस्व कायम रहे। जिस देश में खुद राजभाषा हिन्दी अब तक ज्ञान की भाषा न बन सकी हो वहाँ भोजपुरी, राजस्थानी और छत्तीसगढ़ी के माध्यम से बच्चों को शिक्षा देकर वे उन्हें क्या बनाना चाहते हैं? जिस भोजपुरी, राजस्थानी या छत्तीसगढ़ी का कोई मानक रूप तक तय नहीं है, जिसके पास गद्य तक नहीं विकसित हो सका है, उस भाषा को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल कराकर उसमें मेडिकल और इंजीनियरी की पढ़ाई की उम्मीद करने के पीछे की धूर्त मानसिकता को आसानी से समझा जा सकता है। मैथिली को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल हुए कई वर्ष बीत चुके हैं। वह बिहार के हृदय स्थल की भाषा है किन्तु क्या मिथिला क्षेत्र में एक भी प्राथमिक विद्यालय खुला, जिसमें मैथिली के माध्यम से शिक्षा दी जा रही हो? हाँ, मैथिली की लड़ाई लड़ने वाले कुछ लेखकों को तरह-तरह के ईनाम जरूर मिल गए और उसकी राजनीति करने वालों को सरकारी खजाने से कुछ धन। हाँ, इधर बिहार का एक और बंटवारा करके मिथिलांचल बनाने की माँग जरूर होने लगी है।

हिन्दी की बोलियों में से मैथिली और राजस्थानी को सबसे पहले साहित्य अकादमी ने हिन्दी के समानान्तर स्वतंत्र भाषा के रूप में मान्यता दी और उनके रचनाकारों को पुरस्कृत किया। बाद में मैथिली को हिन्दी से अलग स्वतंत्र भाषा के रूप में संवैधानिक मान्यता मिली। कहने के लिए तो हिन्दी प्रदेश के ही एक बोली के रचनाकार को साहित्य अकादमी ने सम्मानित किया और इस तरह हिन्दी को ही समृद्ध किया, किन्तु प्रकारान्तर से उसने हिन्दी परिवार के एक हिस्से को बाँट कर हमसे अलग कर दिया। अगर साहित्य अकादमी ने ऐसा न किया होता तो शायद मैथिली का हिन्दी से संवैधानिक रूप से अलग हो जाना आसान न होता। साहित्य अकादमी ने राजस्थानी को भी मान्यता दे दी है और संवैधानिक मान्यता पाने की दिशा में राजस्थानी एक कदम आगे बढ़ गई है। हिन्दी को टुकड़ों-टुकड़ों में बांटकर उसे कमजोर करने की साजिश में साहित्य अकादमी सबसे आगे है।

हिन्दी की समस्याएं हिन्दी वाले ही ठीक से समझ सकते हैं। साहित्य अकादमी के इतिहास में हिन्दी का एक लेखक डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी पहली बार साहित्य अकादमी के अध्यक्ष बने हैं। वे हिन्दी क्षेत्र की वस्तुस्थिति बखूबी समझते हैं और मुझे उम्मीद है कि जब तक वे कुर्सी पर रहेंगे हिन्दी को बंटने नहीं देंगे।

यह देखना दिलचस्प होगा कि अस्मिताओं की राजनीति करने वाले कौन से लोग हैं? कुछ नेता, कुछ भोजपुरी के अभिनेता और कुछ साहित्यकार। नेता, जिन्हें वोट मिलता ही इसलिए है कि उनके पास गँवार जनता है, अभिनेता जिनकी भोजपुरी फिल्मों को फलने-फूलने के लिए पैसे मिलेंगे और चंद साहित्यकार जो बोलियों में लिखकर भी पुरस्कृत होना चाहते हैं जो तभी मिलेगा जब उन बोलियों को संवैधानिक मान्यताएं मिलेंगी।

सच्चाई तो यह है कि छत्तीसगढ़ में ९३ बोलियां हैं जिनमें 'हालबी' और 'सरगुजिया' जैसी समृद्ध बोलियां भी हैं। छत्तीसगढ़ी को संवैधानिक दर्जा दिलाने की लड़ाई लड़ने वालों को इन छोटी-छोटी उप बोलियाँ बोलने वालों के अधिकारों की चिन्ता क्यों नहीं है? इसी तरह जिस 'राजस्थानी' को संवैधानिक दर्जा दिलाने की माँग जोरों से की जा रही है उस नाम की कोई भाषा वजूद में है ही नहीं। राजस्थान की ७४ में से सिर्फ ९ (ब्रजी, हाड़ौती, बागड़ी, ढूंढाड़ी, मेवाड़ी, मेवाती, मारवाड़ी, मालवी, शेखावटी) बोलियों को 'राजस्थानी' नाम देकर संवैधानिक दर्जा देने की माँग की जा रही है। बाकी बोलियों पर चुप्पी क्यों?

संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल हिन्दुस्तान की कौन-सी भाषा है जिसमें बोलियां न हो? गुजराती में सौराष्ट्री, गामड़िया, खाकी आदि, असमिया में झखा, मयांग आदि, ओड़िया में संभलपुरी, मुघलबंक्षी आदि, बंगला में बारिक, भटियारी, चिरमार, मलपहाड़िया, सामरिया, सराकी, सिरिपुरिया आदि, मराठी में गवड़ी, कसारगोड़, कोस्ती, नागपुरी, कुडाली आदि। इनमें तो कहीं भी अलग होने का आन्दोलन सुनाई नहीं दे रहा है।

अपने पड़ोसी नेपाल में सन् २००१ में जनगणना हुई थी। उसकी रिपोर्ट के अनुसार अवधी बोलने वाले २.४७ प्रतिशत, थारू बोलने वाले ५.८३ प्रतिशत, भोजपुरी बोलने वाले ७.५३ प्रतिशत, और सबसे अधिक मैथिली बोलने वाले १२.३० प्रतिशत हैं। वहाँ हिन्दी बोलने वालों की संख्या सिर्फ एक लाख पाँच हजार है। यानी, बाकी लोग हिन्दी जानते ही नहीं। मैंने कई बार नेपाल की यात्रा की है। काठमांडू में भी सिर्फ हिन्दी जानने से काम चल जायेगा। नेपाल में एक करोड़ से अधिक सिर्फ मधेसी मूल के हैं। भारत से बाहर दक्षिण एशिया में सबसे अधिक हिन्दी फिल्में यदि कहीं देखी जाती हैं तो वह नेपाल है। ऐसी दशा में यहाँ हिन्दी भाषियों की संख्या को एक लाख पाँच हजार बताने से बढ़कर बेईमानी और क्या हो सकती है? हिन्दी को टुकड़ों-टुकड़ों में बाँटकर जनगणना करायी गयी और फिर अपने अनुकूल निष्कर्ष निकाल लिया गया।

ठीक यही साजिश भारत में भी चल रही है। हिन्दी जाति इस देश की सबसे बड़ी जाति है। वह दस राज्यों में फैली हुई है। इस देश के अधिकांश प्रधानमंत्री हिन्दी जाति ने दिए हैं। भारत की राजनीति को हिन्दी जाति दिशा देती रही है। इसकी शक्ति को छिन्न-भिन्न करना है। इनकी बोलियों को संवैधानिक दर्जा दो। इन्हें एक-दूसरे के आमने-सामने करो। इससे एक ही तीर से कई निशाने लगेंगे। हिन्दी की संख्या बल की ताकत स्वतः खत्म हो जाएगी, हिन्दी भाषी आपस में बँटकर लड़ते रहेंगे और ज्ञान की भाषा से दूर रहकर कूपमंडूक बने रहेंगे। बोलियां हिन्दी से अलग होकर अलग-थलग पड़ जाएंगी और स्वतः कमजोर पड़कर खत्म हो जाएंगी। क्या हिन्दी जाति अपने खिलाफ रची जा रही इस साजिश से बच पायेगी?■

Who Are You Calling Old?

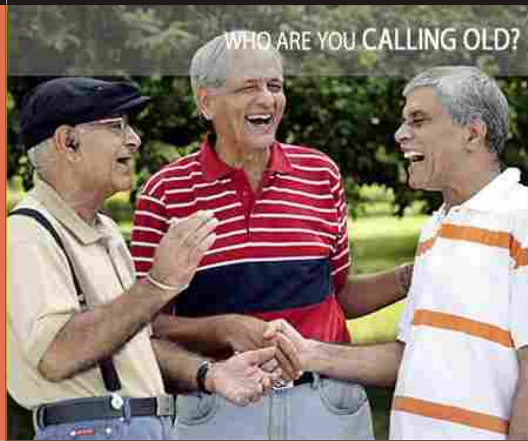

Proud2B60 :

is a special campaign by Help Age India.

Millions of people are living their later years with unprecedented good health, energy and expectations for longevity.

Suddenly, traditional phrases like "old" or "retired" seem outdated. Help Age's "Who Are You Calling Old?" campaign presents the many faces of this New Age.

New language, imagery, and stories are needed to help older people and the general public re-envision the role and value of elders and the meaning and purpose of one's later years. This campaign is about leading this change. It is about combating the negative image of the frail, dependent elder.

General Query

http://www.helpageindia.org

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

डॉ. दिनेश श्रीवास्तव

१९४२ में लखनऊ में जन्म। लखनऊ विश्वविद्यालय (भारत), मोनाश विश्वविद्यालय (ऑस्ट्रेलिया) तथा विस्कांसिन विश्वविद्यालय-मैडिसन (अमेरिका) में शिक्षा। हिंदी विश्वविद्यालय प्रयाग से विशारद की उपाधि। भारत, इथियोपिया, अमेरिका तथा ऑस्ट्रेलिया में अध्यापन तथा शोध कार्य। भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग में हिन्दी अनुवादक तथा दिल्ली में वैज्ञानिक व अनुसंधान परिषद् के प्रकाशन विभाग में 'विज्ञान समाचार सेवा' के पाक्षिक बुलेटिनों का संपादन। हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर लेख तथा पुस्तकें लिखीं। १९७१ से ऑस्ट्रेलिया में निवास। ऑस्ट्रेलियाई सरकार द्वारा हाई स्कूल तथा अनुवादक व दुभाषिया परीक्षाओं में हिन्दी को मान्यता दिलवाई। रेडियो पर हिन्दी कार्यक्रम आरम्भ किया तथा 'देवनागरी' नामक पत्रिका निकाली। २००४ से 'हिंदी-पुष्प' मासिक पत्रिका का संपादन।

सम्पर्क : dsrivastava@optusnet.com.au

ऑस्ट्रेलिया में हिन्दी

आधुनिक ऑस्ट्रेलिया एक बहु-सांस्कृतिक समाज है, जहाँ घरों में बोली जानी वाली भाषाओं की संख्या ४०० है। ऑस्ट्रेलिया की सरकार न केवल आप्रवासियों को अपनी भाषा और संस्कृति बनाये रखने की अनुमति देती है बल्कि इस कार्य में उनकी सहायता भी करती है। परन्तु ऐसा सदा नहीं था। सन् १९०१ में ऑस्ट्रेलिया की सरकार ने 'श्वेत ऑस्ट्रेलिया' की नीति अपनाई थी जिस के अनुसार भारतीयों तथा एशिया-अफ्रीका आदि देशों के व्यक्तियों को ऑस्ट्रेलिया में प्रवासी के रूप में प्रवेश करने पर प्रतिबन्ध था। इस स्थिति में थोड़ा परिवर्तन, सन् १९४७ में भारत के ब्रिटेन से स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद आया जब भारत में पैदा हुए एंग्लो-इंडियन तथा अंग्रेजों को ऑस्ट्रेलिया में स्थाई रूप से निवास करने की अनुमति मिली। १९६० के दशक के उत्तरार्ध में भारत से डॉक्टरों, इंजीनियरों, शिक्षकों आदि को ऑस्ट्रेलिया में स्थाई रूप से निवास करने की अनुमति मिली। उसके बाद के वर्षों में कम्प्यूटर विशेषज्ञों तथा अन्य व्यावसायिकों को भारत से ऑस्ट्रेलिया में आने दिया गया। १९८० में ऑस्ट्रेलियाई नियमों में कुछ और परिवर्तन हुए जिनके कारण ऑस्ट्रेलिया में बसे हुए भारतीयों के रिश्तेदारों का ऑस्ट्रेलिया आना अधिक आसान हो गया।

सन् १९९६ में ऑस्ट्रेलिया में हिंदी भाषियों की संख्या ३५,००० थी। अगले दस वर्षों में यह संख्या दुगनी हो गई। सन् २००६ में की गई जनगणना के अनुसार ऑस्ट्रेलिया में ७०,००० हिंदी भाषी थे और सन् २०११ में यह संख्या एक लाख से ऊपर हो गई।

ऑस्ट्रेलिया में भारतीय मूल के लोग कई देशों, उदाहरण के लिए फीजी, दक्षिण अफ्रीका, मारीशस, इंग्लैंड आदि से आये हैं इसलिए इन सबकी हिंदी भाषा में वे अंतर पाए जाते हैं, जो इन देशों में बसे हिंदी भाषी लोगों की भाषा में देखे जाते हैं।

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षा : ऑस्ट्रेलियाई सरकार की भाषाई नीति के अनुसार सोमवार से शुक्रवार तक लगने वाले सामान्य स्कूलों में केवल ८ चुनी हुई भाषाओं (४ यूरोपियन तथा ४ एशियाई) पढ़ाए जाने का प्रावधान है। इन भाषाओं का चुनाव ऐतिहासिक तथा आर्थिक कारणों से किया गया है और इनमें हिंदी सम्मिलित नहीं है। इसलिए, हिंदी कक्षाएँ अधिकतर सप्ताहांत में लगती हैं। ये कक्षाएँ कुछ प्रदेशों (उदाहरण के लिए विक्टोरिया), प्रादेशिक सरकार के शिक्षा विभाग के अंतर्गत चलती हैं परन्तु अधिकतर ये कक्षाएँ हिंदी के प्रचार में रुचि रखने वाले व्यक्तियों अथवा संगठनों द्वारा चलायी जाती हैं। निजी रूप से चलायी जाने वाली हिंदी तथा अन्य सामुदायिक भाषाओं के विद्यालयों को बहुधा ऑस्ट्रेलिया की केन्द्रीय सरकार से अनुदान मिलता है, जो इन विद्यालयों को चलाने के लिए काफी तो नहीं होता है परन्तु सहायक होता है। केन्द्रीय सरकार की एक योजना के अंतर्गत इन्हें सामुदायिक भाषा विद्यालय (कम्युनिटी लैंग्वेजेज़ स्कूल) का नाम दिया जाता है। ऑस्ट्रेलिया के अधिकांश प्रदेशों में हिंदी इसी प्रकार के विद्यालयों में पढ़ाई जाती है।

माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षा में एक बड़ा परिवर्तन तब आया जब विक्टोरिया की सरकार ने सन् १९९३ में ११वीं तथा १२वीं कक्षा में हिंदी को हाईस्कूल में मान्यता प्रदान की। बाद में, यह मान्यता ऑस्ट्रेलिया के अन्य प्रदेशों ने भी प्रदान की। परिणामस्वरूप आज ऑस्ट्रेलिया के अधिकांश प्रदेशों के विद्यार्थी उच्च माध्यमिक स्तर पर हिंदी पढ़ सकते हैं और

१९९३ में ११वीं तथा १२वीं कक्षाओं में हिंदी के पठन-पाठन को सरकारी मान्यता मिली। अब ऑस्ट्रेलिया के अधिकांश नगरों में विद्यार्थी हाई स्कूल की ११वीं तथा १२वीं कक्षाओं में न केवल हिंदी पढ़ सकते हैं बल्कि १२वीं कक्षा में हिंदी विषय लेकर हाई स्कूल उत्तीर्ण करने पर विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए उन्हें बोनस अंक भी प्राप्त होते हैं।

१२वीं कक्षा की राष्ट्रीय हिंदी परीक्षा में भाग ले सकते हैं।

विक्टोरिया में हिंदी शिक्षा के विकास का इतिहास : जब मैं १९७० के दशक में ऑस्ट्रेलिया आया था, उस समय यहाँ प्राथमिक अथवा माध्यमिक स्तर के बच्चों की हिंदी शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं था। इसलिए अपने पुत्र तथा पुत्री को हिंदी सिखाने के लिए मैंने उन्हें भारत सरकार के केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, दिल्ली के पत्राचार विभाग द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों में प्रवेश दिलवाया। 'हिंदी प्रवेश' तथा 'हिंदी-परिचय' के दो-वर्षीय पाठ्यक्रम आज भी उपलब्ध हैं परन्तु मुझे इनमें कुछ कमियाँ लगीं क्योंकि ये पाठ्यक्रम मूल रूप से अहिन्दी भाषी केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के लिए तैयार किये गए थे जिनके लिए अपनी नौकरी बनाये रखने अथवा पदोन्नति के लिए हिंदी जानना आवश्यक था। इसलिए कई पाठ्यांशों और व्याकरण के नियमों को समझाने की भाषा वयस्कों के लिए उपयुक्त थी पर बच्चों के लिए अनुपयुक्त थी। इसके अतिरिक्त एक पाठ पर आधारित अभ्यास को पूरा करके भारत से त्रुटियाँ ठीक करके वापस लौटने में औसतन एक महीना या उससे अधिक समय लग जाता था। 'हिंदी प्रवेश' पाठ्यक्रम में प्रवेश करने की न्यूनतम आयु दस वर्ष थी। इसलिये दस वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए, यह पाठ्यक्रम अनुपयोगी था। 'हिंदी-प्रवेश' अथवा 'हिंदी-परिचय' पाठ्यक्रमों की परीक्षा देने भारतीय उच्चायुक्त अथवा भारतीय वणिज्य दूतावास के कार्यालय में जाना पड़ता था जो सबके लिए सुविधाजनक नहीं था।

उपरोक्त कारणों से जब मेरे पुत्र तथा पुत्री ने केन्द्रीय हिंदी निदेशालय के पाठ्यक्रम पूरे कर लिए तो मुझे लगा कि अन्य बच्चों को हिंदी सिखाने के लिए ऑस्ट्रेलिया में ही कुछ प्रबंध होना चहिये। मैंने ऑस्ट्रेलिया के विक्टोरिया प्रदेश की सरकार के शिक्षा विभाग से संपर्क किया तो पता चला कि शनिवार को 'सैटरडे स्कूल ऑफ़ माडर्न लैंग्वेजेज़' जो अब 'विक्टोरियन स्कूल ऑफ़ लैंग्वेजेज़' के नाम से जाना जाता है, में अन्य सामुदायिक भाषाओं को पढ़ाए जाने का प्रबंध है, वहाँ हिंदी पढ़ाए जाने का भी प्रबंध किया जा सकता है। परन्तु इसके लिए हिंदी सीखने के इच्छुक बच्चों तथा उनके माता-पिता के नाम तथा पता देने होंगे, विक्टोरिया में हिंदी-भाषी समुदाय की ओर से प्रार्थना-पत्र देना होगा और हिंदी शिक्षक का प्रबंध करना होगा। लगभग तीन वर्षों के प्रयत्न के पश्चात सन् १९८६ में विक्टोरिया में मेल्बर्न के ब्रंज़विक उपनगर में प्राथमिक स्तर पर सबसे पहली हिंदी कक्षाएँ आरंभ हुईं। इस कक्षा के प्रथम शिक्षक स्वर्गीय डॉ. रमाशंकर पाण्डेय थे और उनकी अनुपस्थिति में उनकी धर्मपत्नी, श्रीमती इंदुमती पाण्डेय, जो स्वयं एक अनुभवी अध्यापिका थीं, इस कक्षा को पढ़ाया करती थीं। विद्यार्थियों की संख्या कम होने के कारण इसके बंद हो जाने का भय हमेशा बना रहता था। विक्टोरिया में हिंदी शिक्षा को अधिक प्रोत्साहन तब मिला जब मेरे दस वर्षों के प्रयत्न के पश्चात १९९३ में ११वीं तथा १२वीं कक्षाओं में हिंदी के पठन-पाठन को सरकारी मान्यता मिली। अब ऑस्ट्रेलिया के अधिकांश नगरों में विद्यार्थी हाई स्कूल की ११वीं तथा १२वीं कक्षाओं में न केवल हिंदी पढ़ सकते हैं बल्कि १२वीं कक्षा में हिंदी विषय लेकर हाई स्कूल उत्तीर्ण करने पर विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए उन्हें बोनस अंक भी प्राप्त होते हैं।

११वीं तथा १२वीं कक्षाओं में हिंदी को सरकारी मान्यता दिलवाने में जिन व्यक्तियों ने मेरी सहायता की, उनमें श्रीमती अन्ना कोवियस, श्रीमती इवाल बायरन, श्रीमती सुधा जोशी, स्वर्गीय डॉ. रमाशंकर पाण्डेय, श्रीमती इन्दुमती पाण्डेय तथा श्रीमती मंजीत ठेठी का योगदान प्रमुख था। १९९३ में हाई स्कूल स्तर पर हिंदी को सरकारी मान्यता मिलने से लेकर अब तक श्रीमती मंजीत ठेठी 'विक्टोरियन स्कूल ऑफ़ लैंग्वेजेज़' में ११वीं तथा १२वीं कक्षाओं के विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ाती रही हैं। बाद में, हिंदी अध्यापन के कार्य में कई शिक्षकों ने अपना योगदान दिया। इनमें डॉ. नरेन्द्र अग्रवाल व श्रीमती अनुश्री जैन का योगदान उल्लेखनीय है।

हाई स्कूल स्तर पर हिंदी को सरकारी मान्यता प्राप्त होने के बाद एक प्रमुख समस्या सामने यह आई कि ऑस्ट्रेलिया के पाठ्यक्रम के अनुरूप हिंदी में कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं थी। 'नेशनल सेंटर ऑफ़ साऊथ एशियन स्टडीज़' की निदेशिका, श्रीमती मरीका विक्ज़ियानी ने इस सम्बन्ध में सहायता की और हिंदी में पाठ्य पुस्तक तैयार करने के लिए मेल्बर्न के लट्रोब विश्वविद्यालय को अनुदान दिया गया। श्रीमती रीना वर्मा टंडन ने यह पुस्तक लिखी, जिसका शीर्षक था 'ऑस्ट्रेलिया में समकालीन हिंदी'। यह पुस्तक दो भागों में प्रकशित हुई। इस परियोजना के संचालन तथा पुस्तक के संपादन में, श्रीमती सुधा जोशी तथा श्री रिचर्ड डिलेसी ने विशेष सहयोग दिया।

पाँच वर्षों पश्चात पाठ्यक्रम में परिवर्तन हुए। परिणामस्वरूप एक नई पाठ्यपुस्तक की आवश्यकता महसूस हुई। 'विक्टोरियन स्कूल ऑफ़ लैंग्वेजेज़' के तत्वाधान में दो भागों में 'हिंदी नक्षत्र' नामक एक दूसरी पाठ्य-पुस्तक सन् २००६ और २००७ में प्रकाशित की गई। मेरे साथ इस पुस्तक का संपादन श्रीमती सुधा जोशी ने किया। इस पुस्तक को लिखने में श्री रिचर्ड डिलेसी, डॉ.

नरेंद्र अग्रवाल, श्रीमती मंजू अग्रवाल, श्रीमती सुधा अग्रवाल तथा मृदुला कक्कड़ ने सहयोग दिया। इस पुस्तक को तकनीकी रूप से तैयार करने और कम्प्यूटर साज-सज्जा के प्रस्तुतीकरण का उत्तरदायित्व भी श्रीमती मृदुला कक्कड़ ने संभाला।

हिन्दी और राष्ट्रीय पाठ्यक्रम : सन् २०११ में ऑस्ट्रेलिया की केन्द्रीय सरकार के आदेश पर 'अकारा' (ऑस्ट्रेलियन करीकुलम, एसेसमेन्ट ऐण्ड सर्टिफिकेशन अथॉरिटी) ने राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के लिये ऑस्ट्रेलियाई स्कूलों में पढ़ाये जाने के लिये भाषाओं का चयन किया और भाषा-अध्यापन के मुख्य सिद्धांतों का प्रारूप प्रस्तुत किया। इस प्रारूप में एशियाई भाषाओं के पढ़ाये जाने पर तो ज़ोर दिया गया था। इण्डोनेशियाई, चीनी, जापानी, कोरियाई भाषाओं का समावेश किया गया था परंतु हिन्दी का कहीं नाम भी नहीं था। इस बात से ऑस्ट्रेलिया के हिन्दी समर्थकों को गहरा धक्का लगा और ऑस्ट्रेलिया के विभिन्न हिन्दी प्रचारक संगठनों ने मिल कर 'अकारा' से निवेदन किया कि विश्व में तीसरी सर्वाधिक बोले जाने वाली भाषा हिन्दी को राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिए। इसके लिये एक जन-आन्दोलन चलाया गया और न केवल हिन्दी समर्थक संगठनों ने बल्कि व्यक्तिगत रूप से भी लोगों ने हिन्दी को राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जाने के लिये याचिकाएँ भेजीं। राजनीतिक स्तर पर भी प्रादेशिक तथा केन्द्रीय स्तर पर विभिन्न राजनीतिक नेताओं से भेंट की गयीं। अंत में 'अकारा' ने नवम्बर २०११ में अपने अंतिम प्रारूप में हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जाने का निर्णय घोषित किया परंतु यह प्रावधान लगाया कि सबसे पहले चीनी तथा इतालवी भाषाओं के लिये पाठ्यक्रम तैयार किया जायेगा बाद में अन्य भाषाओं की बारी आयेगी। इस निर्णय से हिन्दी-समर्थकों को बड़ी राहत मिली। हिन्दी को राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जाने की घोषणा के पश्चात शीघ्र ही विक्टोरिया के एक सरकारी प्राथमिक विद्यालय ने न केवल भारतीय बच्चों को बल्कि अपने स्कूल के सभी ३५० विद्यार्थियों को, जिनमें अधिकतर विद्यार्थियों की मातृ-भाषा अंग्रेजी अथवा अन्य भाषा है, हिन्दी सिखाने का निर्णय लिया। आशा है भविष्य में अन्य विद्यालय भी इस उदाहरण का अनुकरण करेंगे और हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि होगी।

> *कैनबरा स्थित 'ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी' में हिंदी काफी समय से पढ़ाई जाती रही है। यहाँ का हिंदी विभाग प्रोफ़ेसर रिचर्ड मग्रेगर द्वारा स्थापित किया गया था। यहाँ हिंदी विषय स्नातक तथा परास्नातक स्तर पर अध्ययन के लिए उपलब्ध है।*

विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी शिक्षा : कैनबरा स्थित 'ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी' में हिंदी काफी समय से पढ़ाई जाती रही है। यहाँ का हिंदी विभाग प्रोफ़ेसर रिचर्ड मग्रेगर द्वारा स्थापित किया गया था। यहाँ हिंदी विषय स्नातक तथा परास्नातक स्तर पर अध्ययन के लिए उपलब्ध है। यहाँ 'एशियन स्टडीज़' संकाय के अंतर्गत स्नातक स्तर पर दो पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं- तीन वर्षीय बैचलर ऑफ़ एशियन स्टडीज़ (हिंदी) और चार वर्षीय बैचलर ऑफ़ एशियन स्टडीज़ विशेषज्ञ (हिंदी), जिसमें तीसरा वर्ष एक भारतीय विश्वविद्यालय में उच्च स्तर पर हिंदी भाषा का अध्ययन शामिल है। चौथे वर्ष में विद्यार्थी हिंदी के अतिरिक्त भारत के बारे में विशिष्ट अध्ययन करते हैं।

इसके अतिरिक्त मेल्बर्न के लट्रोब विश्वविद्यालय में भी स्नातक स्तर पर हिन्दी पढ़ने की सुविधा उपलब्ध है, जहाँ ओपेन युनिवर्सिटी द्वारा दूर-शिक्षा-प्रणाली द्वारा हिंदी शिक्षा उपलब्ध है। कई अन्य विश्वविद्यालयों, उदाहरण के लिए सिडनी विश्वविद्यालय तथा मेल्बर्न के चार विश्वविद्यालयों, मेलबर्न, मोनाश, लट्रोब तथा रायल मेल्बर्न इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालोजी में स्नातक स्तर पर समय-समय पर हिंदी पढ़ाई जाती रही है। खेद की बात है कि सिडनी विश्वविद्यालय में, जहाँ हिंदी सन् २०१० में पढ़ाई जा रही थी, वहाँ यह सुविधा अब नहीं उपलब्ध है। अब विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी विषय का अध्ययन केवल कैनबरा की ऑस्ट्रेलियन नेशनल युनिवर्सिटी तथा मेल्बर्न के लट्रोब विश्वविद्यालय में उपलब्ध है। ९० के दशक में हिंदी को अच्छा प्रोत्साहन मिला था जब मेल्बर्न में स्वर्गीय डॉ. रमाशंकर पाण्डेय तथा श्रीमती सुधा जोशी ने विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी के पठन-पाठन में विशेष योगदान दिया। श्रीमती सुधा जोशी आज भी हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं।

वयस्कों के लिए हिंदी शिक्षा : वयस्कों के लिए हिंदी शिक्षा के स्रोत बदलते रहे हैं। १९७० के दशक में, हिंदी टेक्निकल एण्ड फर्दर एजुकेशन (टेफ) के कुछ केन्द्रों में हिंदी शिक्षा का प्रबंध था तथा १९८० के दशक के उत्तरार्ध में विक्टोरियन स्कूल ऑफ़ लैंग्वेजेज़ की कक्षाओं में स्कूली बच्चों के साथ-साथ, वयस्क विद्यार्थी भी प्रवेश ले सकते थे। इसके अतिरिक्त, कुछ विश्वविद्यालय (उदाहरण के लिए, क्वीन्सलैंड विश्व विद्यालय) भी भूतकाल में वयस्कों के लिए हिंदी-शिक्षा प्रदान करते रहे हैं परन्तु विभिन्न प्रांतों में वयस्कों के लिए हिंदी-शिक्षा का प्रमुख स्रोत वयस्क शिक्षा एजेंसियाँ, उदहारण के लिए, विक्टोरिया में काउंसिल ऑफ़ एडल्ट एजुकेशन रही हैं। वयस्कों के लिए अधिकांश पाठयक्रम, राबर्ट स्नेल की पुस्तक 'टीच योरसेल्फ़ हिंदी' पर आधारित रहे हैं।

मन की बात

हिंदी प्रचारक संस्थान : १९९० के दशक के आरंभिक वर्षों में ऑस्ट्रेलिया के विभिन्न शहरों में हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए कई संस्थायें स्थापित हुईं। उदाहरण के लिए मेल्बर्न में हिंदी निकेतन तथा सिडनी व पर्थ में हिंदी समाज की स्थापना हुई। इनकी गतिविधियों में काफ़ी समानताएँ थीं। होली, दिवाली आदि भारतीय त्योहारों को मनाना; हिंदी कक्षाओं का प्रबंध करना; सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना आदि। किसी सीमा तक ये संस्थाएँ आज भी यह कार्य कर रही हैं। मेल्बर्न के हिंदी निकेतन के एक विशेष कार्यक्रम का उल्लेख करना असंगत न होगा। यह कार्यक्रम है 'वीसीई समारोह' जिसमें हर वर्ष हिंदी विषय लेकर १२वीं कक्षा उत्तीर्ण करने वाले विद्यार्थियों को पुरस्कार देकर सम्मानित किया जाता है। इसी प्रकार पर्थ के हिंदी समाज द्वारा आयोजित 'फुलवारी' कार्यक्रम बच्चों को अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर प्रदान करता है। सन् २०११ में ऑस्ट्रेलिया में हिंदी-शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए 'हिन्दी शिक्षा संघ (ऑस्ट्रेलिया)' नामक संस्था की स्थापना की गई। गत दो वर्षों में इस संस्था ने 'बाल-दिवस' समारोह मनाया और २०१३ में मेल्बर्न में हिंदी-शिक्षा का रजत जयंती समारोह मनाया। 'विक्टोरियन स्कूल ऑफ़ लैंग्वेजेज़' के सहयोग से, हिंदी शिक्षा संघ (ऑस्ट्रेलिया), ऑस्ट्रेलियाई विद्यार्थियों के लिए हिंदी की पाठ्य पुस्तकें तैयार करने में लगा हुआ है। पहली कक्षा के विद्यार्थियों के लिये श्रीमती अनुश्री जैन द्वारा लिखी हुई पुस्तक पिछले वर्ष प्रकाशित हो चुकी है। अगले स्तर की पुस्तकों पर काम चल रहा है। ऑस्ट्रेलिया के प्रमुख शहरों में कवि-गोष्ठियाँ तथा कवि-सम्मलेन भी इन संस्थाओं द्वारा आयोजित किये जाते हैं। मेल्बर्न में शारदा कला केंद्र द्वारा लंबे समय तक, हर दूसरे महीने साहित्य-संध्या तथा संगीत-संध्या आयोजित की जाती रही हैं। पिछले दो वर्षों से साहित्य संध्या आयोजित करने का काम, ऐच्छिक रूप से एक उत्साही वर्ग ने ले लिया है, जिसका संयोजन डॉ. नलिन शारदा तथा हरिहर झा कर रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों से सिडनी में 'भारतीय विद्या भवन ऑस्ट्रेलिया' भी भारतीय संस्कृति तथा हिंदी-उर्दू के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। १४ सितम्बर, २०१० को हिंदी-दिवस पर, 'न्यू साऊथ वेल्स' संसद भवन में एक समारोह में ४७ हिंदी-उर्दू के कवियों- शायरों की कृतियाँ 'गुलदस्ता' शीर्षक की पुस्तक का विमोचन तथा इन भाषाओं तथा भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में योगदान देने वाले व्यक्तियों को सम्मानित करके एक नया कीर्ति स्तंभ कायम किया है।

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी मीडिया :

समाचार-पत्र - ऑस्ट्रेलिया में अंग्रेजी में अनेक भारतीय मासिक समाचार-पत्र निकलते हैं। केवल मेल्बर्न से ही एक दर्जन से अधिक ऐसे समाचार पत्र निकलते हैं। इनमें से केवल एक मासिक समाचार-पत्र है, जिसमें दो पृष्ठ हिंदी के होते हैं। कुछ अन्य समाचार-पत्रों में अन्य भारतीय भाषाओं, उदाहरण के लिए तमिल, सिंधी, पंजाबी के भी कुछ पृष्ठ होते हैं। ऑस्ट्रेलिया से 'इंडिया मेल्बर्न' नामक समाचार-पत्र में अंग्रेजी, गुरुमुखी तथा हिंदी में भी पठन सामग्री होती है। हाल में सिडनी से 'हिंदी गौरव' नामक हिंदी समाचार प्रकाशित होना प्रारंभ हुआ है।

> *२०११ में ऑस्ट्रेलिया में हिंदी-शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए 'हिन्दी शिक्षा संघ (ऑस्ट्रेलिया)' नामक संस्था की स्थापना की गई। विगत वर्षों में इस संस्था ने 'बाल-दिवस' समारोह मनाया और २०१३ में मेल्बर्न में हिंदी-शिक्षा का रजत जयंती समारोह मनाया। ऑस्ट्रेलिया के प्रमुख शहरों में कवि-गोष्ठियाँ तथा कवि-सम्मलेन भी विभिन्न संस्थाओं द्वारा आयोजित किये जाते हैं।*

रेडियो - 'स्पेशल ब्राडकास्टिंग सर्विस' या संक्षेप में 'एसबीएस' रेडियो राष्ट्रीय स्तर पर प्रति सप्ताह ४ घंटे हिंदी में कार्यक्रम प्रसारित करता है। हाल ही में भारत से सीधे आधे घंटे का हिंदी में समाचार का प्रसारण भी आरंभ हुआ है। इसके अतिरिक्त, कई सार्वजनिक तथा निजी रेडियो स्टेशन भी हिंदी कार्यक्रम प्रसारित करते हैं।

हिंदी चलचित्र - 'एसबीएस' टेलीविज़न समय-समय पर हिंदी चलचित्र प्रसारित करता रहा है। अब तो हिंदी चलचित्र ऑस्ट्रेलिया के प्रमुख नगरों के सिनेमाघरों में भी देखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय दुकानों से हिंदी चलचित्रों के विडियो-कैसेट तथा डीवीडी किराये पर लिए जा सकते हैं या ख़रीदे जा सकते हैं। पिछले कुछ वर्षों से भारत के टेलीविज़न चैनलों, उदहारण के लिए, ज़ी, स्टार, टाइम्स अदि चैनलों द्वारा भी हिंदी कार्यक्रमों का प्रसारण उपलब्ध है।

सांस्कृतिक कार्यक्रम - कई स्थानीय संस्थाएँ हिंदी साहित्य, संगीत तथा नृत्य के कार्यक्रम आयोजित करती हैं और भारत से भी कलाकारों को आमंत्रित करती हैं। इसके अतिरिक्त त्योहारों के अवसर पर विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रम, मेले आदि भी आयोजित किये जाते हैं।

संक्षेप में, ऑस्ट्रेलिया में, हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। यद्यपि अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। आशा है कि भविष्य में ऑस्ट्रेलिया में हिंदी का पठन-पाठन करने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि होगी और भारत के आर्थिक शक्ति में उभरने के साथ-साथ, ऑस्ट्रेलिया तथा अन्य देशों में न केवल भारतीय उद्‌गम के व्यक्तियों में बल्कि वहाँ के स्थानीय लोगों में भी हिंदी की लोकप्रियता बढ़ेगी।■

यशवन्त कोठारी
हिन्दी के नामी व्यंग्यकार। चार उपन्यास, नौ व्यंग्य संकलन एवं विविध विषयों पर बीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। चर्चित उपन्यास यक्ष का शिकंजा, असत्यम्-अशिवम्-असुन्दरम्। उल्लेखनीय व्यंग्य-संकलन : कुर्सीसूत्र, हिन्दी की आखिरी किताब, राजधानी और राजनीति, लोकतन्त्र की लंगोट, सौ श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं। अन्य चर्चित रचनाओं में हैं : नेहरूजी की कहानी, साँप हमारे मित्र, 'ठ' से ठहाका, प्रकाश की कहानी, प्राचीन खेल परम्परा, आग की कहानी।
सम्पर्क : ८६, लक्ष्मी नगर, ब्रह्मपुरी बाहर, जयपुर. फोन : ०१४१-२६७०५९६ ईमेल : ykkothari3@yahoo.com

आह! अमेरिका, वाह! अमेरिका

अमेरिका के क्या कहने। हर कोई जीवन में कम से कम एक बार अवश्य अमेरिका आना चाहता है, आकर वापस जाना नहीं चाहता। जीवन के असली आनन्द अमेरिका में है और हर भारतीय इनका आनन्द उठाना चाहता है। जो भी पहली बार आता है। आश्चर्य चकित रह जाता है। न ठेले, न थड़िया, न आवारा गाय, बैल, कुत्ते। सब कुछ व्यवस्थित। लेकिन व्यवस्था में अव्यवस्था के आनन्द भी यहीं है। कानून सख्त लोग मस्त।

थेंक्यू, सॉरी, एस्क्यूज मी जैसे शब्दों से काम चल जाता है। ये शब्द काफी हैं। आधे अमेरीकी शॉपिंग माल में व्यस्त हैं और बचे हुए आधे अपनी बारी का इन्तजार करते हैं। वे एक-दूसरे से ज्यादा सामान खरीदने का शौक रखते हैं। अमरीकी अपने आपको सर्वश्रेष्ठ समझते हैं मगर यह समझ कैसी है इसे शेष विश्व ही जानता है। डॉलर का रुतबा घटता-बढ़ता रहता है।

अमरीकी हँसी-मजाक में माहिर है। एक होटल के बाहर लिखा था- 'हम ड्रग एडिक्ट को काम पर नहीं रखते, लेकिन हमारे प्रतिद्वन्दी के पास आपके लिए काम है।' एक होटल में लिखा था- 'हम चाहते हैं आप हमारे होटल में ही रहें, कभी भी चेक आउट नहीं करें, मगर फिर भी आप करते हैं तो समय ग्यारह बजे का है।' यहां भी गे और लेसबियन की बहस जारी है। ज्यादातर अमेरिकी काम ही काम करते हैं। महिलाएँ ज्यादा काम करती हैं।

> आधे अमेरीकी शॉपिंग माल में व्यस्त हैं और बचे हुए आधे अपनी बारी का इन्तजार करते हैं। वे एक-दूसरे से ज्यादा सामान खरीदने का शौक रखते हैं। अमरीकी अपने आपको सर्वश्रेष्ठ समझते हैं मगर यह समझ कैसी है इसे शेष विश्व जानता ही है।

लॉसवेगास हो या डेनबर, बर्फ का आनन्द यहां अलग ही है। ठण्ड तेज और राजनीति गरम। मेरिजुआना को अमरीकी समाज में मान्यता मिल गई है। खाओ-पीओ-ऐश करो का दर्शन सर्वत्र लागू है। लोग खुशहाल हैं, मगर एक तनाव, अकेलापन हावी है। हर घर एक मिनी वालमार्ट लगता है। खरीददारी एक शौक है। आवश्यकता नहीं। अमरीकी खूब खाते हैं। खूब पीते हैं। यहाँ भी बीमारी, बेकारी, बेरोजगारी है और चौराहों पर भीख मांगते गरीब देखे जा सकते हैं। मनोरंजन सबसे बड़ा व्यवसाय है और निशुल्क सुविधा का लाभ जी भर कर उठाया जा सकता है। नववर्ष पर ट्रेनें फुल चलती हैं। गाना-बजाना, पार्टी, सब एक साथ जमकर चलता है।

अखबारों की दुनिया भी बड़ी शानदार है। एक किलो तक के अखबार। विज्ञापनों की भरमार। पढ़ते-देखते आदमी थक जाता है। अखबारी विज्ञापनों के सहारे ही खरीदारी तय की जाती है।

बारहवीं तक शिक्षा निशुल्क है और इसके बाद की फीस सुनकर मध्यमवर्गी चकित रह जाता है। मगर लोन खूब मिलते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में सबसे नवीनतम चीज़ें उपलब्ध हैं। मैंने कुछ स्कूल देखे जो भारतीय स्कूलों से काफी अच्छे हैं और निशुल्क। यहाँ की पुस्तकालय व्यवस्था की तारीफ की जानी चाहिये। मैंने प्रेमचन्द्र के उपन्यास ढूंढे तो उन्होंने शिकागो के पुस्तकालय से मंगवाकर दिये। मैंने इन पुस्तकों को अन्यत्र वापस पढ़कर जमा करा दिया। यह व्यवस्था पूरे अमेरिका में लागू है। और निशुल्क है। मलाला के ऊपर लिखी पुस्तक को बुक कराने पर मेरा नम्बर प्रतीक्षा सूची में ८५वां आया और पुस्तकालयों में ५५ प्रतियां हैं।

सीडी बच्चों के खेल आदि निशुल्क उपलब्ध है। पुस्तकालयों में समय-समय पर कई तरह के कार्यक्रम भी रखे जाते हैं। निशुल्क हिन्दी, संस्कृत क्राफ्ट आदि में कार्यक्रम रखे जाते हैं। इन कार्यक्रमों में बच्चे, बड़े किशोर सभी के लिए अलग-अलग व्यवस्था होती है।

यहाँ पर हार्न कभी कभार ही बजाये जाते हैं। पैदल यात्री को देखकर कारें रुक जाती हैं और पैदल यात्री के पार करने के बाद ही चलती हैं। कई जगहों पर पैदल यात्रियों के लिए बटन दबाने पर यातायात के रुकने की भी व्यवस्था है। कानून के दायरे में सब कुछ ठीक है, लेकिन गलती करने पर कानून की आंख बड़ी तेजी से काम करती है और भारी आर्थिक दण्ड की व्यवस्था भी है। कानून से बचना मुश्किल है। हर गलती की सजा का प्रावधान है। यहाँ पर थूकना, कचरा फेंकना संभव नहीं है। लेकिन कचरे के निस्तारण की बेहतरीन व्यवस्था है। सड़कें साफ-सुथरी, चौबीस घन्टे गरम पानी, ठण्डा पानी, रेस्टरूमों की व्यवस्था भी अच्छी है। हर व्यक्ति सड़क पर अपने में व्यस्त है और एक-दूसरे की निजी स्वतन्त्रता की रक्षा को प्रतिबद्ध है।

यहाँ खाओ-पीओ-ऐश करो का दर्शन सर्वत्र लागू है। लोग खुशहाल हैं, मगर एक तनाव, अकेलापन हावी है। हर घर एक मिनी वालमार्ट लगता है। खरीददारी एक शौक है। आवश्यकता नहीं। अमरीकी खूब खाते हैं। खूब पीते हैं। यहाँ भी बीमारी, बेकारी, बेरोजगारी है और चौराहों पर भीख मांगते गरीब देखे जा सकते हैं।

अमरीका भारतीय मेधा से प्रभावित है। राष्ट्रपति ने भी कहा है पढ़ो नहीं तो भारतीय आकर तुम्हारा रोजगार ले लेंगे। वैसे भारतीय छाये हुए हैं, बेहतर काम करते हैं मगर वेतन-भत्ते कम मिलते हैं। अमेरिका में गरीब हैं, गरीबी है मगर अमीरी का आफताब भी चमक रहा है। सब पैसे की माया और पैसे का खेल है और यह खेल अनवरत पूरी दुनिया में खेला जा रहा है।■

रेखा भाटिया

जन्म इंदौर, मध्यप्रदेश में हुआ। देवी अहिल्या विश्वविद्यालय से विज्ञान में स्नातक। लेखन में छात्र जीवन से ही रुचि रही। भारत और दुबई में रहने के बाद वर्त्तमान में अमेरिका के शर्लोट शहर में रहती हैं। लेखन के अलावा नृत्य और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी। अनेक रेडियो कार्यक्रम प्रसारित हो चुके हैं।

सम्पर्क : rekhabhatia@hotmail.com

तो क्या सोचते हैं आप!

मौसम सर्द है, श्याम है, हल्की-हल्की बारिश मन को भिगो रही है। हवा शुद्ध है, शांत है, एक भीनी खुशबू लिए। पेड़ों पर पत्तियाँ नदारत हैं, जिसमें से झाँकती सूरज कि मध्यम रोशनी, उसमें से उभरते रंग-बिरंगे चहचहाते पंछी जो अपनी ही धुन में यहाँ-वहाँ उछल रहे हैं, कभी घास पर, कभी डाली पर, अपनी धुन में खोये, लाल-पीले, नीले, काले, श्यामल पंछी। जनवरी की कड़ाकेदार सर्दी भी इन्हें फर्क नहीं पड़ रहा है, दाना मिले या किट अपनी चोंच में दबाये चहकते-कूदते अपनी भूख मिटाये, मतवाले अलबेले।

हाथ में गर्म चाय का प्याला लिए सोफे पर पसरी हुई, लैपटॉप हाथ में लिए मैं अपनी दुनिया में व्यस्त, अचानक गर्दन घुमाकर खिड़की से बाहर के दृश्य पर एक नजर पड़ते ही उसमें खो जाती हूँ। एक नन्ही हल्की मुस्कान अधरों पर थिरक उठती है। मेरा ध्यान भंग करने के लिए धन्यवाद नन्हे पंछियों! मैं अपने आप से बातें करती हुई बुदबुदाती हूँ।

स्वामी विवेकानंद के विचारों को पढ़ रही थी, 'एक ही जीवन है। जो मनुष्य इसी जन्म में मुक्ति प्राप्त करना चाहता है, उसे एक ही जन्म में हजारों वर्ष का काम करना पड़ेगा। वह जिस युग में जन्मा है, उससे उसे बहुत आगे जाना पड़ेगा, किन्तु साधारण लोग किसी तरह रेंगते-रेंगते ही आगे बढ़ सकते हैं।' सोचने लगी, 'हमारा जीवन कहाँ आकर इस सृष्टि में ठहरता है? मनुष्य इसी धरती पर जन्म लेता है और इसी धरती पर उसकी मृत्यु भी हो जाती है। एक बार सांसें बंद हो गयी तो पिछला कुछ भी याद नहीं रहता है। कौन से रिश्ते, कैसे रिश्ते? जो जुड़ते हैं? टूटते हैं? शरीर के रिश्ते, मन के रिश्ते, आत्मा के रिश्ते, सांसें रुकने के बाद भी क्या कभी हम इन्हें याद भी रख पाते हैं? जीवन का अर्थ क्या है? परमात्मा ने यह सृष्टि रची है, यदि यह सांसारिक भ्रम है तो इस जीवन की रचना ही क्यों हुई है?

इसी तरह के कई प्रकार के गम्भीर विचारों का बवंडर मस्तिष्क में चल रहा था, जब इन पंछियों कि चहचहाहट ने ध्यान भंग किया। जीवन का अर्थ संभवतया इन्हें भी आता होगा? परन्तु इस अर्थ के मायने इनके लिए भिन्न हैं? भूख महसूस होती है तो दाने कि तलाश में निकल पड़ते हैं। प्रकृति ने जो दिया उसी से संतुष्ट हो जाते हैं। यह सोचकर समय नहीं नष्ट करते कि आज खाने में कौन-सा रुचिकर भोजन ढूँढा जाये। पंछी हो या धरती पर अन्य प्राणी, सभी प्रकृति द्वारा उपलब्ध पदार्थों पर अपने भोजन कि जरूरत के लिए निर्भर हैं। मानव की रचना भी कुछ इसी तरह की है, परन्तु भोजन के लिए हमारी सभी जरूरतों के लिए वह प्रकृति पर निर्भय तो है ही, साथ ही अपनी जरूरतों के लिए मानव को अलग तरह का श्रम करना पड़ता है। मानव की इन्हीं जरूरतों को पूरा करने के लिए सबसे तेज मस्तिष्क भी धरती पर मानव का ही होता है जो बिना रुके चलता रहता है। अपनी कल्पनाओं से मानव कई सृष्टियों को अपने मस्तिष्क में उपजा सकता है। मानव की उड़ान तो सबसे ऊंची है, अंतहीन है। वह सब कुछ खोजना चाहता है, प्रकृति में समाये हर रहस्य को जानने का इच्छुक है। खरबों मनुष्य जीवन और खरबों मनुष्य दिमाग इस प्रकृति और सृष्टि से भी आगे निकलने कि सोच रहे हैं? हमारी यह दौड़, यह होड़ हमें किस दिशा की ओर लिए जा रही है? कल रेडियो पर खबर सुन रही थी किस-किस तरह के नये-नये

आविष्कार हो रहे हैं। डिजिटल ब्लू टूथ, टूथ ब्रश के साथ जुड़ा है, जिससे पालकों को पता चल सकेगा कि बच्चे ने अपने दांत ठीक से साफ़ किये हैं या नहीं? टेबलेट हाथ में लेकर आप घर के किसी भी कोने में बैठकर रसोईघर के चूल्हे को नियंत्रित कर सकते हैं। उड़ने वाली कार, थ्रीडी प्रिंटर। ऐसे कितने ही अनगिनत आविष्कार जो मानव जीवन को सुखमय और सुविधाजनक बना सकते हैं। लेकिन इनका अंत कहाँ हैं? कैसा सुविधाजनक जीवन। एक और प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग जैसी घातक जानलेवा बीमारियां, जिनका जन्मदाता भी मनुष्य ही है, से सम्पूर्ण विश्व जूझ रहा है दूसरी ओर आविष्कारों, नयी टेक्नोलॉजी से सजे सुखमय सुविधाजनक जीवन को पाने की होड़ में माता-पिता का उलझा हुआ जीवन, जिनके पास समय ही नहीं है अपने बच्चों के दाँत कुछ पल ठहर कर साफ़ करवा सकें? खूबसूरत प्रकृति जिसने सब कुछ दिया है इंसान को, लेकिन अब अपने अस्तित्व, अपने भविष्य के लिए मनुष्य की दया पर निर्भर हो चुकी है? इस अंधी दौड़ में भागते-भागते अंत में किसकी विजय होनी है? मनुष्य की आने वाली पीढ़ी जो सिर्फ और सिर्फ संघर्ष करती रहेगी स्वच्छ जल, स्वच्छ वायु, स्वच्छ धरती, साफ़ आसमान के लिए जहाँ पर खुली हवा में साँस ली जा सके बिना मानसिक तनाव लिए।

चीन की आर्थिक स्थिति दिनोंदिन मजबूत होती जा रही है परन्तु यह एक बहुत बड़ा प्रश्न है जिसका उत्तर अभी ढूंढना बाकी है। वहाँ कई स्थानों पर प्रदूषण की मात्रा इतनी बढ़ चुकी है कि स्कूली बच्चे मास्क पहन कर स्कूल जाते हैं, स्कूल में प्ले ग्राउंड भी पूरी तरह से ढँक दिए गए हैं जिससे प्रदूषण का असर कम हो जाये। प्रदूषण की वजह से चीन में कई स्थानों पर पाँच मीटर की दूरी तक भी देख पाना सम्भव नहीं हो पाता है। यह तरक्की मनुष्य जाति को किस और धकेल रही है?

विचलित और व्याकुल मन ने कुछ महसूस किया। देर तक लेपटॉप पर गड़ी हुई नज़रों और अकड़ी हुई गर्दन ने मन को फिर खिड़की के बाहर देखने के लिए उकसाया। मैंने गर्दन घुमाई और देखा कि पंछी अपनी धुन में मस्त थे। अचानक मेरे आँगन में एक काली बिल्ली आकर पंछियों पर झपटी। पंछी पहले से ही चौंकने थे, इससे पहले कि बिल्ली उन पर झपट कर उन्हें पकड़ पाती वे फर से उड़कर, तीसरे घर के आँगन में जाकर चहकने-फुदकने लगे और पीछे रह गया मेरा सूना पड़ा आँगन और उसमें बैठी खिसियाई काली बिल्ली, जिसे देखने का मन मेरा भी नहीं हो रहा था। वर्षा भी थम चुकी थी। आँगन की खुशबू नदारत थी। मुझे मेरे दूसरे काम याद आ गए। काली बिल्ली को बैठ कर देखना मेरे लिए भी आनंदायक सिद्ध नहीं हो रहा था। मुझे मेरे सवालों का जवाब मिल चुका था। यही एक धरती है, जहाँ मनुष्य जन्म लेता है, कर्म करता है, प्रकृति ने सभी जीवों को एक समान अवसर दिए हैं, उसे खूबसूरती से उपजाना या नष्ट कर देना, जिससे स्वयं मनुष्य का अस्तित्व भी जुड़ा हुआ है, स्वयं मनुष्य के हाथ में है, बस मनुष्य के नियंत्रण में इतना ही है। परन्तु यह सृष्टि, यह ब्रह्मांड, ऐसे कई अनगिनत ब्रह्मांड हैं, जिन पर मनुष्य का अब तब कोई नियंत्रण नहीं है, वहाँ भी जीवन होगा, जीवन के अंश रहेंगे, कई ऐसे आँगन होगें जहाँ पंछी चहचहायेंगे। परन्तु यदि प्रदूषण नामक काली बिल्ली को नियंत्रण में नहीं लिया गया तो जल्द ही पृथ्वी का आँगन भी सूना हो जायेगा। मृत्यु तो सभी के लिए एक दिन निश्चित है। परन्तु भ्रम में जी रही मानव जाति का भ्रम भी जल्द ही टूट जायेगा। कितना अच्छा होता यदि मनुष्य जीवन और मनुष्य जीवन आधार भी इन नन्हे पंछियों की तरह सरल होता? और विवेकानंद के विचार मन में कौंधने लगे, 'हमें इसी जन्म में कई जन्मों जितना काम करना है, साधारण मनुष्य जीवन से थोड़ा ऊपर उठकर वरन हम इसी तरह रेंगते-रेंगते आगे बढ़ते रहेंगे साधारण मनुष्य की तरह।' ■

> *खूबसूरत प्रकृति जिसने सब कुछ दिया है इंसान को, लेकिन अब अपने अस्तित्व, अपने भविष्य के लिए मनुष्य की दया पर निर्भर हो चुकी है? इस अंधी दौड़ में भागते-भागते अंत में किसकी विजय होनी है?*

रमेश जोशी

१८ अगस्त १९४२ को चिड़ावा, राजस्थान में जन्म। राजस्थान विश्वविद्यालय से एम.ए. और रीजनल कालेज ऑफ एज्यूकेशन भोपाल से बी.एड., पोरबंदर से पोर्ट ब्लेयर तक घुमक्कड़ी, प्राथमिक शिक्षण से प्राध्यापकी करते हुए केन्द्रीय विद्यालय जयपुर से सेवानिवृत्त। संप्रति : अमरीका में अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति की त्रैमासिक पत्रिका 'विश्वा' के प्रधान संपादक। मूलतः व्यंग्यकार, गद्य-पद्य की ६ पुस्तकें प्रकाशित। ब्लॉग - jhoothasach.blogspot.com

संपर्क : 4758, darby court stow, OH-44224 USA Email : joshikavirai@gmail.com Tel. : 330-688-4927

पानी, प्राण और पेट्रोल

इस समय सारी दुनिया पेट्रोल के चारों ओर घूम रही है। सारे उत्पातों की जड़ में यही पदार्थ है क्योंकि इसके बिना न तो कारें चल सकती हैं और न ही यात्री और लड़ाकू हवाई जहाज। इस काले सोने के बारे में और बातें करने से पहले संयुक्त राज्य अमरीका की एक घटना की बात करें जिसके सन्दर्भ पेट्रोल से होते हुए पानी और मनुष्य के प्राणों तक जाते हैं।

पेट्रोल के पीछे पागलपन ने आज वही हालत पैदा कर दी है जो कभी अमरीका के इतिहास में 'गोल्डन रश' के चक्कर में हुई थी। खनिज तेल के परंपरागत स्रोतों के अलावा और भी तरीके और तरकीबें ढूँढे जा रहे हैं। यह पता चला है कि ज़मीन के नीचे कुछ इलाकों में तेल है लेकिन वह इस रूप में नहीं है कि उसे पम्प करके निकाला जा सके। वह कहीं पत्थरों के बीच इस रूप में है कि उसे धरती के अंदर कुछ रसायन पहुँचाकर उनमें इस तरह विस्फोट किया जाता है कि वह पेट्रोल इस रूप में आ जाता है कि उसे निकाला जा सके। इस पद्धति को 'हाइड्रोलिक फ्रेकिंग' कहते हैं।

अमरीका के कई इलाकों में इस पद्धति से पेट्रोल निकाला जा रहा है जिनमें अधिकतर संयुक्त राज्य अमरीका में उत्तर से दक्षिण के मध्यवर्ती पठारी और कृषि क्षेत्र वाले कोई १२-१३ राज्य आते हैं। इस धंधे में वह व्यक्ति या किसान जिसकी ज़मीन से तेल निकाला जाता है उसे १५ प्र.श. और शेष ८५ प्र.श. में से स्थानीय प्रशासन, प्रांतीय प्रशासन, केन्द्रीय प्रशासन और ठेका लेने वाला उद्योगपति अपना-अपना हिस्सा बाँट लेते हैं।

इस संबंध में पेसिल्वेनिया नामक राज्य की एक घटना है। मैकमरे नामक इलाके की प्लास्टिक सर्जन डॉ. एमी पारे के क्लिनिक में कुछ लोग अपने चेहरे पर उभरे खून से भरे चकत्ते दिखाने आए जिनकी वे प्लास्टिक सर्जरी करवाना चाहते थे। डॉक्टर ने उन चकत्तों की बायप्सी करवाई लेकिन उनमें कैंसर जैसा कुछ भी नहीं पाया गया। लेकिन यह देखा गया कि इस शिकायत को लेकर जो लोग आ रहे हैं वे सब इसी तरह के खनिज-गैस खनन स्थान के पास रहते हैं। उनके पेशाब में फिनाइल और हिप्पुरिक एसिड पाया गया। वे सब अपने खेतों में खुदे कुँओं का पानी पीते हैं। जब उनका कुओं का पानी पीना बंद करवा दिया तो उनमें सुधार हुआ। (यह जानकारी 'अमेरिकन मेडिकल न्यूज़' साप्ताहिक, ३ सितम्बर २०१२ से साभार ली गई है।)

> *पेट्रोल के पीछे पागलपन ने आज वही हालत पैदा कर दी है जो कभी अमरीका के इतिहास में 'गोल्डन रश' के चक्कर में हुई थी। खनिज तेल के परंपरागत स्रोतों के अलावा और भी तरीके और तरकीबें ढूँढे जा रहे हैं।*

खनिज तेल या गैस निकालने की प्रक्रिया में धरती के अंदर विस्फोट या फ्रेकिंग की गई उसके कारण वहाँ के भूजल में मनुष्य के लिए हनिकारक रसायन मिल गए थे। अपने खेत में खुदाई के लिए ठेका देने वाली एक महिला शेरी वार्ग्सन भी हैं। उन्होंने अपने कुएँ से जुड़े नल से निकलने वाले पानी के सामने एक तीली जलाकर दिखाई तो एक आश्चर्य हुआ कि वह पानी गैस की तरह जलने लगा अर्थात वह पानी पीने के योग्य नहीं रहा। यही हाल उत्तर-पूर्वी पेंसिल्वेनिया के बहुत से इलाकों का है जहाँ के लोगों को पानी के बाहरी स्रोतों पर निर्भर होना पड़ रहा है।

जब डाक्टरों ने खनिज गैस और तेल के उन ठेकेदारों से उन रसायनों के बारे में जिनका वे इस खनन में उपयोग करते हैं, जानकारी चाही तो उन्होंने ट्रेड सीक्रेट और पेटेंट कानून का बहाना बनाकर जानकारी देने से मना कर दिया। जब ज्यादा दबाव पड़ा तो कहा गया कि यदि डॉक्टर इसे गुप्त रखने की शपथ लें तो वे ऐसा कर सकते हैं। मतलब कि धंधा महत्त्वपूर्ण है न कि आदमी के प्राण। प्रोफिट और पेट्रोल प्राणों से बड़ा हो गया।

भारत से अरब देशों में होकर आए लोग जब अपने अनुभव बताते हैं कि वहाँ पेट्रोल पानी से सस्ता है तो लोग अपने भारत में जन्म लेने को धिक्कारते हैं। कोई यह नहीं सोचता कि जल से ही जीवन है और जहाँ जल के पर्याप्त साधन रहे हैं वहीं सभ्यता का विकास हुआ है। अरब देशों में जहाँ भी जल का अभाव या प्राप्ति दुर्लभ रही वहाँ के कठिन जीवन के बारे में कौन नहीं जानता। इसलिए सारी सभ्यताएँ नदी-घाटियों में ही विकसित हुई। पेट्रोल के कारण आज वे देश पीने ही क्या, बगीचे लगाने और स्विमिंग पूल बनाने के लिए भी पानी की व्यवस्था कर सकते हैं लेकिन क्या इससे पानी का महत्त्व कम हो जाता है या इस पृथ्वी पर पानी की उपलब्धता असीम और अनंत हो जाएगी। क्या पैसे के लिए उद्योगों का अपशिष्ट गंगा, यमुना और अन्य नदियों में डालने से इनके जल-प्रदूषण की क्षतिपूर्ति की जा सकती है?

धन कमाने के लिए दुनिया में कारखाने लगाकर लोग जाने क्या-क्या मानव और प्रकृति विरोधी काम नहीं कर रहे हैं? क्या आज तक भारत सरकार कोल्ड ड्रिंक बनाने वाली कंपनियों से उनमें मिलाए जाने वाले कीटनाशकों तक के बारे में पूछ सकी? क्या आज बड़े-बड़े बाजारों में बिकने वाले डिब्बा बंद खाद्य पदार्थों के बारे में सही जानकारी उपभोक्ताओं को मिलती है? क्या दवा निर्माता डॉक्टरों से मिलकर मरीजों पर अनधिकृत परीक्षण नहीं करते? क्या डॉक्टरों से मिलकर मरीजों को महँगी और अनावश्यक दवाइयाँ बेचकर और खिलवाकर उनके धन और स्वास्थ्य के साथ अन्याय नहीं किया जा रहा? लोगों के प्राण और प्राणों के आधार पानी के साथ यह खिलवाड़ किसके लाभ के लिए

> अपने से चौगुनी जनसंख्या वाले देश भारत से पन्द्रह गुना से भी अधिक पेट्रोल का उपभोग अमरीका में होता है। यह सब इस धरती के, मनुष्य एवं अन्य जीवों के अधिकार के संसाधनों का भी अपहरण है और इस ग्रह के विनाश में एक अहम भूमिका निभाने का अपराध भी।

और क्यों? क्या इस पृथ्वी के संसाधन इस पृथ्वी के सभी जीवों के लिए हैं या फिर कुछ शक्तिशाली, चालाक, निर्दय और दुष्ट लोगों के लिए हैं? अपने से चौगुनी जनसंख्या वाले देश भारत से पन्द्रह गुना से भी अधिक पेट्रोल का उपभोग अमरीका में होता है। यह सब इस धरती के, मनुष्य एवं अन्य जीवों के अधिकार के संसाधनों का भी अपहरण है और इस ग्रह के विनाश में एक अहम भूमिका निभाने का अपराध भी।

आज आपको ठण्ड या गरमी से बचने के लिए कपड़े, मकान चाहिए, फिर वातानुकूलन, फिर घर ही नहीं खेल के मैदान, तरणताल तक सब कुछ वातानुकूलित चाहिए। जबकि इसी अमरीका में एमिश लोग जो योरप से आए थे आज भी इसी अमरीका के ओहायो और पेंसिल्वेनिया में बिना बिजली, कार आदि के बड़े मज़े से रह रहे हैं और शेष विलासिता पूर्ण जीवन जीने वालों से अधिक स्वस्थ और प्रसन्न हैं।

कोई भी सारी दुनिया के लोगों को गुरुकुलों, आदिवासियों जैसा कठिन जीवन जीने के लिए बाध्य किए जाने की बात नहीं कर रहा है लेकिन भोग की भी तो कोई सीमा हो? क्या हम इस दुनिया से जाने से पहले सब कुछ निबटाकर जाना चाहते हैं कि हमारे बाद आने वाली हमारी ही संतानों के लिए कुछ न बचे।

क्या 'जियो और जीने दो' और 'वसुधैव कुटुम्बकं' केवल फैशन के बतौर केवल बतियाने के विषय मात्र हैं? ■

डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'
१ नवम्बर १९६२ के समशेर नगर, बहादुर गंज, सीतापुर, उत्तर प्रदेश में जन्म। विगत दो दशकों से साहित्य सृजन में सक्रिय। 'दलित साहित्य का स्वरूप विकास और प्रवृत्तियाँ' पुस्तक प्रकाशित। शिरोमणि सम्मान (साहित्य, कला परिषद जालौन) तथा तुलसी सम्मान (मानस स्थली, सूकरखेत, उत्तर प्रदेश) से सम्मानित। सम्प्रति- आचार्य, हिन्दी विभाग, गुआंगदांग अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, ग्वान्जाऊ, चीन।
सम्पर्क : dr.gunshekhar@gmail.com

सीधे बेटी को क्यों न रिंग कर लूँ?

हम भारत के निवासियों और भारतेतर वासियों में अब मेरी तुलना की प्रवृत्ति कुछ अधिक मुखर हो रही है। यह अच्छा है या बुरा यह तो नहीं पता लेकिन खुद को मूल्यांकित कर सकने की क्षमता तो ज़रूर आ गई है। गुआंगदोंग विश्व विद्यालय परिसर में चार बड़े-बड़े भोजनालय, जिनमें दो तो तीन-तीन मंज़िला हैं और हर मंज़िल के हाल में लगभग ५०० लोगों को एक साथ भोजन कराने की सुविधा है। स्वतः आकर अलग-अलग काउंटरों से आटोमेटिक तरीके से अपने मनपसंद आइटम को उठाइए, कार्ड को स्पर्श कराइए और सामान लेकर किसी न किसी कुर्सी पर बैठ कर चॉप स्टिक से उठा-उठाकर हर वस्तु का हौले-हौले से आनंद लीजिए। हर कैंटीन के खचाखच भरे हुए हॉल यह दर्शाते हैं कि यहाँ के लोगों में बनाकर खाने की बजाय बना-बनाया खाने का रिवाज़ ज्यादा है।

हम पहले बचाने की सोचते हैं कि किस काम में कितनी बचत है फिर काम शुरू करते हैं और ये लोग ही क्या दुनिया के अधिकतर देशों के लोग पहले कमाते हैं बाद में बचाने के विषय में सोचते हैं। जो पहले बचाने की सोचते हैं वे अव्वल तो ज़ल्दी काम शुरू ही नहीं कर पाते हैं और करते भी हैं तो लाभ-हानि के गुणा-भाग में कुछ ज़्यादा ही समय लगाकर अंततः हानि कर बैठते हैं। मैं भी चीन आने के हफ़्ते भर पहले तक भावनात्मक कारणों से यही गुणा-भाग करता रहता था कि वहाँ जाकर दो सालों में कितना बचा लूँगा। इस गुणा-भाग में रातों की नींद और दिन का चैन सब कुछ गँवा बैठा था। अपने पूर्व विभाग से कार्य मुक्त होकर भी इसी निरर्थक गुणा-भाग में लगा था (जबकि यहाँ आना सुनिश्चित हो जाने के बाद समय गंवाने के अलावा कोई अन्य लाभ न था)। उन दिनों तो मेरी स्थिति उस मुग्धा नायिका की-सी हो गई थी जो अपने प्रेमी को स्थायी रूप से पाने की लगन की हल्दी वाली गाँठ कलाई में बाँधे होते हुए भी माँ-बाबू सभी को पकड़-पकड़ कर रोती है और कंधे झिंझोड़ते हुए कहती है कि, मुझे अपने से अलग मत करो हे मेरी माई! हे मेरे बाबू! उन दिनों माँ, पत्नी, पोती, बेटे-बहू, भांजी यहाँ तक कि उस कुत्ते से भी जिसे पाल रखा था, पहले से कई गुना अधिक मोह हो गया था। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के फोन पर फोन आने पर भी मेरे कानों पर जूँ नहीं रेंग रही थी। मैंने सोच रखा था कि दिन के दिन बाई एअर चले जाएँगे। बस यहीं से पहली बार बचाने के बजाय कमाने की ओर ध्यान गया कि जब अधिक कमाएँगे तो कुछ खर्च करने में क्या हर्ज़ है? पहले उनसे पूछा था तो पता चला था कि देश के भीतर नहीं केवल अंतर्राष्ट्रीय यात्रा का ही प्लेन का फेयर मिलता है। इसलिए ट्रेन की सोची थी लेकिन बाद के मोह ने पैसे को दरकिनार कर दिया था और अंततः जब अंतिम अल्टीमेटम मिला कि इस तरह आप जा तो पाओगे ही नहीं और टिकट का पैसा ऊपर से भरना पड़ेगा। इसी अंतिम निर्देश के साथ मुझे सदर्न चाइना का दिल्ली से ग्वान्ज़ाऊ का टिकट भेजा गया कि शुक्रवार तक आपको भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली से हर हाल में संपर्क कर औपचारिकताएं पूरी कर लेनी हैं अन्यथा आप जानें और आपका काम। इस संबंध में किसी भी प्रकार की परेशानी आ सकने के जोखिम और इतने सख्त निर्देशों के बावज़ूद अनेक अनुनय-विनय करके आखिर चीन-प्रस्थान के दिन ही वहाँ पहुँच सका।

यह मोह ही होता है, जो बड़े से बड़े इंसान को बड़े-बड़े जोखिमों में धकेल सकता है। इसी जोखिम पर सवार होकर दिल्ली में भाग-दौड़ करते हुए मुझे अपने अभिन्न और सच्चे शुभचिंतक श्री एस.एम. भट्ट बहुत याद आए। आने के बहुत

पहले से वे ही वे मुझे चीन आने के लिए मानसिक रूप से तैयार करते रहे थे। इस संदर्भ को प्रायः और अधिकतर ज़बरन बीच में लाते हुए वे बार-बार समझाते थे कि सारे फ़ैसले भावनाओं की तुला पर नहीं तोले जा सकते हैं। तुम्हारा यह फ़ैसला केवल और केवल भौतिक तुला पर ही तुल सकेगा। सब कुछ दरकिनार कर एक बार चले जाओ। जाकर मुझे याद करोगे। सच में उस दिन उन्हें दिल्ली में दिन भर याद किया था कि यदि विलम्ब से आने की भावनात्मक बेवकूफी न करता तो सारा काम आसानी से हो जाता। और, यहाँ भी दिन में कई-कई बार याद करता रहा हूँ। लेकिन आज फिर वही भावनात्मक संकट आ खड़ा हुआ सिर्फ एक सपने के कारण। उसकी चर्चा आगे करेंगे पहले विदेश आने के औचित्य को तो जस्टिफाइ कर लें।

बाहर जाना केवल पैसे कमाना ही नहीं होता। वहाँ का हमारा साहित्यिक, सांस्कृतिक आदान-प्रदान इससे बहुत अधिक मूल्यवान होता है। अपने लिए भी और देश व समाज के लिए भी। यह बाहर निकलना अन्तरप्रान्तीय भी हो सकता है और अंतर्राष्ट्रीय भी। सूरत प्रवास के पहले मैं अपने लखनऊ को दुनिया का सर्वश्रेष्ठ शहर मानता था और पैदाइशी गाँव समशेर नगर को शेक्सपियर के हैमलेट से भी अधिक खूबसूरत। वहाँ पहुँचकर लखनऊ से मोहभंग तो नहीं हुआ लेकिन सूरत इतना अच्छा लग चुका था कि विदेश के लंबे प्रवास के बाद जब स्वदेश लौटना हुआ तो सूरत की धरा पर ही लैंड किया न कि लखनऊ की। इसका सीधा कारण बच्चों के लिए रोज़गार के अवसरों की उपलब्धता के साथ-साथ सामाजिक सुरक्षा की निश्चिंतता थी। आज विदेशी धरती पर रहते हुए भी निश्चिन्त हूँ कि मेरा परिवार वहाँ पूरी तरह से सुरक्षित है। परन्तु गाँव के लिए बराबर चिंता बनी रहती है कि हमारे बंधु लोग कहीं कोई बखेड़ा न खड़ा कर लें। वहाँ का सामाजिक वातावरण ऐसा है कि आपको आगे बढ़ते देख आप ही के लोग कहीं न कहीं उलझा देंगे और सामने से मदद करके आपको निकाल कर लाके जीवन भर एहसान लादेंगे। पूरे गुजरात में ऐसा कुछ भी नहीं है। जिस गुजरात के हिन्दू-मुस्लिम रिश्तों को लेकर सारी दुनिया सशंकित है उसी धरा पर रहते हुए मेरे मित्र करार हुसेन सिद्दीकी केवल मेरे काम के लिए पूरे हफ़्ते दिल्ली में पड़े रहे। समाज की चलन के हिसाब से इनसे ज़्यादा हमारे अपने कहे जा सकने वाले एक हिन्दू मित्र ने उसी काम के लिए सूरत से दिल्ली और दिल्ली से सूरत का एअर टिकट और यथोचित मार्ग व्यय बताया था। इतना ही नहीं वे अपनी सुविधा से दिल्ली जाते जबकि ये मेरी ज़ररूरत और मेरी सुविधा को देखते हुए अविलंब दिल्ली गए थे। मेरे कार्य की प्रगति के सन्दर्भ में इनसे दूरभाषी संपर्क दुतरफ़ा था। कभी-कभी तो मेरे सोचने से भी पहले इनका फोन आ जाता था। यदि कहीं दुर्भाग्य वश इनसे काम न हो

> *बाहर जाना केवल पैसे कमाना ही नहीं होता। वहाँ का हमारा साहित्यिक, सांस्कृतिक आदान-प्रदान इससे बहुत अधिक मूल्यवान होता है। अपने लिए भी और देश व समाज के लिए भी।*

पाता और उनकी शरण में जाना पड़ता तो उन हिन्दू मित्र के जरिए होने वाले काम का नगाड़ा पिट जाता और इधर ये हैं कि इनके द्वारा किए-कराए काम को केवल ये जानते हैं या जिसने किया है। खैर! मैं तो केंद्र में हूँ ही। इसलिए एक मैं भी जानता हूँ। यह है गुजरात की भूमि का असर, जिसने मुझे बाँधा और ऐसा बाँधा कि लखनऊ में घर-द्वार होते हुए भी एक फ्लैट पर यहाँ भी फ्लैट हो ही गया। मैंने कहीं लिखा है कि यदि बुद्ध केवल कपिलवस्तु में पैदा हो सकते थे तो बापू केवल और केवल गुजरात में।

न जाने क्यों आज सुबह से वस्तुओं के बजाय व्यक्तियों पर ही ध्यान जा रहा है। आज प्रकृति ने भी कुछ ख़ास नहीं लुभाया। रास्ते में पैदल चलते हुए पहले दिन वाले पीपल, बरगद, लताएँ, गुल्म, हेज़ और भी तरह-तरह के पेड़-पौधे मिले, लेकिन किसी ने भी रोका नहीं। मेरा भी ज़रा भी मन नहीं किया कि थोड़ा ठहर कर इन्हें निहार लूँ। शायद इसके पीछे एक सपना था जो रात को बहुत डरा गया था। यह मनोवैज्ञानिक सचाई भी है कि डरे हुए व्यक्ति को रूपसी अप्सराएं भी चुड़ैलें लगने लगती हैं। सपने में मैंने अपनी बेटी को डूबते हुए देखा था और न जाने कैसे उसे उस भँवरजाल से बचकर निकलते भी। हम उससे लिपट-लिपट कर इतना रोए जितना कि उसकी शादी पर विदाई में भी नहीं रोए थे, जबकि वहाँ वह हमसे जुदा हो रही थी और यहाँ एक नई ज़िन्दगी के साथ मिल रही थी ।

आज उसी सपने ने मुझे सुबह से घूम फिर कर बेटी में ही उलझा रखा है। आश्चर्य यह कि उसकी कुशल जानने के लिए उसे नहीं उससे हजार कोस दूर बैठी माँ को सुबह पाँच बजे ही फोन लगा दिया। उसे भी माइग्रेन ने जकड़ रखा था। अतः मैंने उसे दूसरा माइग्रेन उपहार में देना उचित न समझा। थोड़ी देर बाद पुनः फोन लगाया तो उसने फोन पर बात करने की पहली बार असमर्थता जताते हुए बाद में फोन करने का अनुग्रह किया। बाद में उसे, दोनों बेटों और बहू इन सभी को बारी-बारी से फोन किया। लेकिन न तो बेटी को फोन करने की हिम्मत जुटा सका और न इन सबको वह सपना सुनाने की। अपने ऊपर अवचेतन और अर्धचेतन का ऐसा दबाव पहले कभी न महसूस किया था। आज का यह सपना हमारी तथाकथित वैज्ञानिक सोच पर ही टूटा और हमारे जन्म-जन्मान्तर की थाती (हमारी वैज्ञानिक सोच के दावे) वाला हमारा भव्य हवा महल आज सुबह-सुबह भरभराकर गिर चुका था। डरे-डरे ही सही इस समय जब दो बजकर चालीस मिनट हो रहे हैं (और किसी भी कोने से कोई भी सूचना नहीं है, न अच्छी और न बुरी), सोचता हूँ कि क्यों न सीधे बेटी को ही रिंग कर लूँ।■

प्रभु जोशी

१२ दिसंबर, १९५० देवास के गाँव पीपलरावां में जन्म। जीवविज्ञान में स्नातक तथा रसायन विज्ञान में स्नातकोत्तर के उपरांत अंग्रेज़ी साहित्य में भी प्रथम श्रेणी में एम.ए., अंग्रेज़ी की कविता स्ट्रक्चरल ग्रामर पर विशेष अध्ययन। पहली कहानी १९७३ में धर्मयुग में प्रकाशित। 'किस हाथ से' लंबी कहानियाँ तथा 'उत्तम पुरुष' कथा संग्रह प्रकाशित। हिंदी दैनिक नईदुनिया के संपादकीय तथा फ़ीचर पृष्ठों का पाँच वर्ष तक संपादन। बचपन से चित्रकारी करते हैं एवं जलरंग में विशेष रुचि। मध्यप्रदेश साहित्य परिषद का कथा-कहानी के लिए अखिल भारतीय सम्मान। साहित्य के लिए गजानन माधव मुक्तिबोध फेलोशिप। संप्रतिः स्वतंत्र लेखन एवं पेंटिंग।

संपर्क : ४, संवाद नगर, इन्दौर। मोबाइल : ०९४२५३-४६३५६ ईमेल : prabhu.joshi@gmail.com

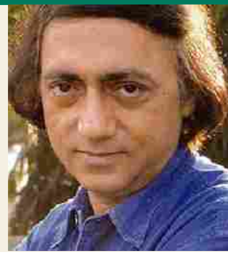

एक अनश्वर नागरिक के जन्म का भय

पिछले दिनों ही विज्ञान जगत से एक बड़ी खबर यह आयी कि अब मनुष्य और रोबोट के संसर्ग से बच्चे भी पैदा हो सकेंगे। और यह बात महज दो-ढाई दशकों के भीतर ही, खाम-खयाली या स्वैर-कल्पनाओं के दायरे से बाहर आकर, एक निर्विवाद सचाई के रूप में हमारे सक्षम मौजूद होगी। निश्चय ही इसके चलते भविष्य में मानव की स्थिति क्या होगी, यह एक गहरी और सार्वभौम चिंता का विषय बन गया है। अब इस दुनिया के सामने सवाल यह नहीं होगा कि प्रकृति और सृष्टि से मनुष्य का क्या रिश्ता होना चाहिये, बल्कि सवाल तो ये होगा कि हम किसे 'मानव' कहेंगे? पृथ्वी पर करोड़ों वर्षों की जैविक-यात्रा के बाद बने इस मानव-समाज का वास्तविक नागरिक कौन होगा? मनुष्य और मनुष्य के संसर्ग से प्रजनन के जरिये जन्म लेने वाला सृष्टि-मनुष्य, या कि 'मनुष्य और रोबोट' के संसर्ग से बना 'उत्पाद—रोबो-ह्यूमन। हम किसे मशीन कहेंगे और किसे पशु?

दोनों के दरमियान फर्क करने के लिये हमारे पास बुनियादी तर्क क्या होंगे? इसमें मानव-श्रेष्ठ होने और कहलाने का अधिकारी कौन होगा? सृष्टि-मनुष्य या कि मशीन-मनुष्य! क्या उसकी कृत्रिम-बुद्धि 'मानव' बुद्धि से उच्च-स्तर की होगी? और यदि वह बुद्धि और व्यवहार के स्तर पर इस 'मानव' से उत्कृष्ट हुआ तो क्या इस आज के पूरे मानव-समाज और संसार पर उसका वर्चस्व ही, अंतिम वर्चस्व नहीं हो जायेगा? क्या दोनों के दरमियान द्वन्द्व नहीं शुरू हो जायेगा?

कहने का कुल जमा मकसद यह कि भविष्य के संसार को अब हम क्या कहेंगे? 'उत्तर-मानव समाज' या कि 'उत्तर-विज्ञान-समाज'? कहीं यह तो नहीं होगा कि वैज्ञानिक-आविष्कार के नये विस्तार के साथ 'मनुष्य' की 'मनुष्यता' का और अधिक विघटन हो जायेगा और वह सामाजिक-उपादेयता का मात्र एक छोटा-सा पुर्जा भर रह जायेगा। यह कितना विचित्र है कि हम आज बयासी वर्ष पूर्व प्रकाशित अल्डुअस हक्सले की विज्ञान-फन्तासी, 'ब्रेव न्यू वर्ल्ड' के किस कदर निकट आ गये हैं। स्वप्न, अब दुःस्वप्न के दायरे में दाखिल होने जा रहा है। संसार के टेक्नोनियलिस्ट की बिरादरी इस उपलब्धि को लेकर बहुत उत्साहित है कि वे 'कल्पना का स्वर्ग', इस धरती पर उतारने में कामियाबी के

> अब इस दुनिया के सामने सवाल यह नहीं होगा कि प्रकृति और सृष्टि से मनुष्य का क्या रिश्ता होना चाहिये, बल्कि सवाल तो ये होगा कि हम किसे 'मानव' कहेंगे?

> क्या, नया मनुष्य, अस्मिता, करुणा तथा भावनाओं के प्रश्नों के साथ स्वप्न भी देख सकेगा? क्या, वह कविता, कहानी और संगीत की सूक्ष्मतम संवेदनाओं को भी अपने भीतर आविष्कृत करके उसे रच सकेगा? क्या मानव-चेतना की अनन्यता भी उसमें होगी?

सर्वाधिक पास पहुँच गये हैं। क्योंकि सृष्टि के द्वारा जन्मा मनुष्य 'रोग' और 'मृत्यु' से निरन्तर भयभीत रहा है और नया मशीन के संसर्ग से जन्म लेने वाला मनुष्य इन तमाम दुष्चिंताओं से सर्वथा मुक्त होगा। वैज्ञानिक फ्रांसिस किक यह पहले ही सत्यापित कर चुके हैं कि 'मनुष्य' वस्तुतः न्यूरो-सेल्स के व्यापक-संग्रह और उससे संबंधित मॉलीक्यूल के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह संसार, जिसे हम प्राणी-जगत के रूप में जानते हैं, वह अब एक नये 'साइबर-स्पेस' का सामना कर रहा है। जिस तरह अभी तक मनुष्य अपने चारों तरफ 'इकॉलाजी' से घिरा है, अब इस उत्तर-विज्ञान युग में वह विद्युत-तरंगों, सूचना-संकेतों और डिजिटल-इकोलॉजी से घिरा हुआ है, जिन्हें मनुष्य अपनी नंगी आँख से न तो देख सकता है और ना ही अपने 'मानवीय-कानों' से उन्हें सुन या ग्रहण कर सकता है। अतः भौतिक-अभौतिक के बीच उपस्थित विभेद को खत्म कर देने वाला। जो नया 'मनुष्य' जन्म लेने वाला है, वह एक किस्म का 'साइबरनेटिक आर्गेनिज्म' होगा। वह अपने व्यवहार में आपरेशनल 'साइबोर्ग' होगा, जिसकी बुद्धि 'मनुष्य' की बुद्धि से कई-कई गुना अधिक तीव्र होगी। उसके दिमाग से 'कम्प्यूटर की क्षमता' को नाथ देने से उसे 'न्यूरो-मेंसर' बनने की सहूलियत होगी। उस नये मनुष्य के शरीर से एक तीन मिली-मीटर गोलाई और ढाई सेन्टी-मीटर लम्बाई वाला ट्रांसपाण्डर फिट करने से वह किसी भी इलेक्ट्रोनिक उपकरण को कुछ ही पल में सक्रिय कर देगा। वह क्षणभर में मंगल ग्रह के नागरिक से भी अपना सम्पर्क कर सकेगा।

याद आ रहा है, जब दुनिया के सर्वप्रथम साइबोर्ग वैज्ञानिक प्रोफेसर केविन वारविक सन् १९९८ में भारत आये थे तो उन्होंने कहा था, 'मनुष्य' मशीन से जैविक सम्बन्ध स्थापित कर लेने के बाद, वह ब्रह्माण का सर्वोत्कृष्ट 'आब्जेक्ट' बन सकता है। लेकिन थोड़े ही कालखण्ड बाद वह मनुष्य पर हावी हो जायेगा। क्योंकि, वह एक 'अकल्पित अनश्वरता' को प्राप्त कर लेगा। हालाँकि, सन् १९८४ में विलियम गिब्सन ने न्यूरोमेंसर की विशिष्टताओं का बखान करते हुए कहा था कि अब हम जीरो-चिप की थियोरेटिकल संभावना के लगभग पास हैं। मनुष्य और मशीन की अन्तर्किया आरंभ होते ही, 'मादा-रोबोट' से ऐसा बेवी रोबोट जन्म लेगा, जो संसार को अभी तक की तमाम हकीकतों को छोटा और हँसने की सामग्री में बदल देगा। क्योंकि वर्चुअल-रियल्टी ने, मनुष्य को अपने यथार्थ को स्वयम् के मनोनुकूल रचने की शक्ति प्रदान कर दी है। नैनो-टेक्नोलॉजी के प्राकट्य से संसार का मानचित्र ही बदल जाने वाला है।

बहरहाल, कल्पना कीजिए कि खुदा-न-खास्ता यदि इस नये मशीन-मनुष्य के दिमाग में हिटलर की तरह कहीं यह खयाल पैदा हो गया कि, 'विशुद्ध-नस्ल' तो उसी की है तो वह मनुष्य से मनुष्य को जन्म देने वाले मनुष्य के संहार का संकल्प ले सकता है। वह कहेगा, इनमें तो 'रोग' और 'मृत्यु' की विभीषिका हमेशा ही लगी रहती है, जिसके कारण हम सब हर-हमेशा ही परेशान रहते हैं। इससे बेहतर तो यही है कि इनको ही समूल नष्ट ही कर दिया जाना चाहिये ताकि हमेशा की झंझट ही खत्म हो जाये। हकीकत में तो अब मैं ही पूर्ण-मानव हूँ। बहरहाल, भविष्य में मानव-समाज के साथ क्या होने जा रहा है, इसका अनुमान भी अत्यन्त जटिल है। क्या, नया मनुष्य, अस्मिता, करुणा तथा भावनाओं के प्रश्नों के साथ स्वप्न भी देख सकेगा? क्या, वह कविता, कहानी और संगीत की सूक्ष्मतम संवेदनाओं को भी अपने भीतर आविष्कृत करके उसे रच सकेगा? क्या मानव-चेतना की अनन्यता भी उसमें होगी? या फिर वह एक चैत्य-पुरुष की आध्यात्मिकता से रहित मात्र एक इकाई भर होगा, जिसकी प्रतिलिपि या कोई चाहेगा तो आवश्यकता के अनुसार दूसरा संस्करण बना सकने में सक्षम हो सकेगा। उसकी हार्ड-डिस्क की कॉपी तैयार करके रखी जा सकती है। लेकिन हम फिर भी भयों पर नियंत्रण रखते हुए इस भ्रम को जीवित रख सकते हैं कि वह दुःखों से दूर रहने के बाद निश्चय ही एक दिन अपने आप से, जार्ज आरवेल के जॉन की तरह कहेगा– 'मैं सुख नहीं चाहता, इससे घबरा गया हूँ... मैं दुखी रहने का अधिकार चाहता हूँ... मैं पाप और पुण्य चाहता हूँ, मैं कविता चाहता हूँ... और हाँ, वह ईश्वर भी, जिसकी मैंने तर्क के तीरों से हत्या कर दी थी और यह सब मैंने इसलिए खो दिया कि मेरे पास 'अन्तरात्मा' का अभाव था। एक अध्यात्म शून्य संसार में मनुष्य होना और बने रहना मुश्किल है... मैं फिर से केवल 'मनुष्य' होना चाहता हूँ।' आमीन।■

उदयन वाजपेयी
जन्म १९६० सागर, मध्यप्रदेश। चर्चित कवि-कहानीकार। कहानी संग्रह- सुदेशना, दूर देश की गन्ध, कविता संग्रह- कुछ वाक्य, पागल गणितज्ञ की कविताएँ, एक निबन्ध संग्रह, फिल्मकार मणिकौल के साथ उनके सम्वाद की पुस्तक 'अभेद आकाश' प्रकाशित। कृतियों का तमिल, बंगाली, मराठी, फ्राँसीसी, पोलिश, बुल्गारियायी, स्वीडिश, अँग्रेजी आदि में अनुवाद। कृष्ण बलदेव वैद फैलोशिप और रज़ा फाउण्डेशन पुरस्कार से सम्मानित।
संपर्क : एफ-९०/४५, तुलसीनगर, भोपाल-४६२००३ ई-मेल : udayanvajpeyi@gmail.com

आखिर ये लोग कौन हैं?

हाल ही में मैं मुम्बई से भोपाल आ रहा था। लगभग अँधेरी सुबह ही मुझे मुम्बई के हवाई अड्डे पर पहुँच जाना पड़ा। सर्दी बहुत नहीं थी पर हल्का सा अँधेरा हवाई अड्डे के चारों ओर छाया हुआ था। भीतर की जगमग में सभी लोग अपने-अपने कामों में मुब्तिला थे। कोई टिकिट बना रहा था, कोई बनवा रहा था। कोई सामान ढोता हुआ एक ओर जा रहा था, कोई कुर्सी पर पसरा था। ज्यादातर लोग चुप्पी साधे हुए थे। न कोई किसी से कुछ बोल रहा था, न कोई किसी की ओर देख रहा था। मुझे याद आया कि जब-जब भी आप यूरोप की किसी रेलगाड़ी में बैठे हैं, वहाँ आपको एक गहरी चुप्पी और एक-दूसरे के प्रति उदासीनता अनुभव होती है। वहाँ कोई भी यात्री आमतौर पर रेलगाड़ी के डिब्बे में घुसते ही बिना किसी की ओर देखे अपना सामान ऊपर या नीचे की दराज में फँसाता है और किताब या अखबार खोलकर अपनी सीट पर बैठ जाता है। उसकी नजरें या तो खिड़की के बाहर के दृश्य की ओर जाती हैं या अपनी हाथ की किताब या अखबार पर। पूरे डिब्बे में चुप्पी फैली होती है। कोई किसी से 'सॉरी', 'पार्डन' या 'थैंक्यू' के अलावा कुछ नहीं बोलता। ठीक यही चुप्पी और ठीक यही एक-दूसरे के प्रति उदासीनता मुझे मुम्बई के हवाई-संसार में अनुभव हुआ। मैं यह सब भूल गया होता अगर जहाज की मेरी बगल की सीट पर मुझे एक उतना ही उदासीन, निरपेक्ष लड़का न मिला होता। वह थोड़ी देर से भीतर आया और मेरी ठीक बगल की सीट पर बैठ गया। मैंने सहज ही उसकी ओर मुस्कुराते हुए इस तरह देखा मानो उससे यह कह रहा होऊं कि मुझे आपके यहाँ आने से खुशी हुई है। पर उसकी आँखों ने मेरे देखने को सोखने की जगह दीवार की तरह मेरी ओर वापस भेज दिया। वह मुझे देखते हुए भी नहीं देख रहा था। वह हर किसी को देखते हुए भी न देखने का अभ्यासी था। यह कोई अनोखी बात नहीं है। मैंने अक्सर हवाई अड्डे जैसी लकदक जगहों पर इस तरह के अनेक लोगों को देखा है। वे दूसरों की ओर जिस गहरी उपेक्षा से आँखें घुमाते हैं, वह लोगों के प्रति गहरी गैर-दिलचस्पी के बिना हो ही नहीं सकता। ऐसा कुछ देश के लाखों गाँवों में या कस्बों में संभव

> "ये निश्चय ही हमारे समाज में नये-नये शुरू हुए वरीयतावाद (मैरिटोक्रेसी) के शिकार हैं। और इसी कारण अपने को फिज़ूल ही दूसरों से बड़ा या सफल या महत्वपूर्ण मानकर दूसरों की उपेक्षा के रास्ते खुद को असहाय और अकेलापन करने के मूर्खतापूर्ण और करुण व्यापार में लगे हुए हैं।"

नहीं है। वहाँ अजनबी से अजनबी मनुष्य के प्रति लोगों की आँखों से किसी न किसी किस्म की आत्मीयता जरूर छलकती है। यह इसलिए है कि ये ग्रामीण या छोटे शहरों के लोग दूसरों की जिन्दगी को अपने से अलग मानने के आदी नहीं हैं। वे अपनी जिन्दगी को दूसरों की जिन्दगी से जुड़ा हुआ ही महसूस करते हैं। उनके लिए उनकी जिन्दगी अकेलेपन के महासागर में टापू न होकर एक ऐसे वन में लगे वृक्ष की तरह है जहाँ अन्य वृक्षों के होने से ही सारे वृक्षों में जीवन व्यापता है। यह जीवन को असीम मानने वाली सहज ग्रामीण दृष्टि है। इसमें दूसरों के लिए बिना किसी कोशिश के जगह बनती रहती है। मुझे याद है कि कई बरस पहले जब मैं अपने एक फिल्मकार दोस्त के साथ रायगढ़ जिले के एक गाँव में लगभग पन्द्रह किलोमीटर चलकर पहुँचा था (क्योंकि वहाँ इसके अलावा पहुँचा ही नहीं जा सकता था) तो हमारे बिना कुछ कहे हमारे लिए गाँव के चौक के पास कोई ग्रामीण दौड़कर खटिया ले आया। दूसरा ग्रामीण भागकर गया और हमारे लिए पानी और गुड़ ले आया। उन्हें अब तक हमारा न नाम मालूम था और न यह मालूम था कि हम वहाँ इतनी दूर से चलकर क्यों आए हैं। हम सिर्फ उनके लिए अतिथि थे (अजनबी नहीं), थके थे और निश्चय ही प्यासे थे। उन ग्रामीणों के लिए हमारा ऐसा होना ही हमारे खैरमकदम के लिए पर्याप्त था। लेकिन गाँव से हवाई अड्डे तक पहुँचते-पहुँचते यह आत्मीयता कहाँ चली गयी? हमारे हवाई-पुरुष ऐसे उदासीन क्यों हो गये कि वे न किसी से बात करना चाहते हैं और न किसी की ओर देखना चाहते हैं? यूरोप में ऐसा होना मुझे समझ में आता है क्योंकि यूरोप में बहुत सिलसिलेवार ढंग से समाज को व्यक्ति में तोड़ा गया है। वहाँ व्यक्ति स्वातन्त्रय के नाम पर व्यक्तियों को बेहद अकेला कर दिया गया है। यह सब औद्योगिक क्रांति और उसके बाद के यूरोपीय समाज के बनने के दौरान हुआ है। इस उदासीनता को यूरोप के व्यक्ति ने बहुत दुःख के साथ सहा है। आज वह जितना अकेला हो गया है, उसे वह सह नहीं पा रहा। वहाँ के साईकेट्री विभागों में मरीजों की भीड़ लगी रहती है। अधिकतर मनोरोगियों की व्याधियों का कारण सामुदायिक जीवन से उनका टूट जाना है। मनुष्य अन्य मनुष्यों और जीव-जन्तुओं से जुड़कर ही स्वयं को अनुभव कर सकता है। अगर वह इनसे टूट जाता है, वह खुद को अनुभव करने के रास्ते से पूरी तरह भटक गया होता है। मानवीय समाज या प्रकृति के अन्य जीव-जन्तु मनुष्य की लौकिक आवश्यकताएँ ही नहीं, उसकी आध्यात्मिक जरूरत को भी पूरा करते हैं। इस पारस्परिकता के बगैर हर मनुष्य भीतर से अकेलापन महसूस करने को बाध्य हो जाता है। हमारे हवाई-पुरुष स्वयं को अन्यों से ऊँचा या विलक्षण मानने के फेर में भीतर-ही-भीतर अकेले होते जाने को अभिशप्त हैं, उन्हें देखकर यह लगता ही

ग्रामीण या छोटे शहरों के लोग दूसरों की जिन्दगी को अपने से अलग मानने के आदी नहीं हैं। वे अपनी जिन्दगी को दूसरों की जिन्दगी से जुड़ा हुआ ही महसूस करते हैं। उनके लिए उनकी जिन्दगी अकेलेपन के महासागर में टापू न होकर एक ऐसे वन में लगे वृक्ष की तरह है जहाँ अन्य वृक्षों के होने से ही सारे वृक्षों में जीवन व्यापता है।

नहीं कि ये लोग उस भारतीय सभ्यता के नागरिक हैं जहाँ समूचे ब्रह्माण्ड को एकमात्र ब्रह्म की छाया मानने की परम्परा है, जहाँ सभी मनुष्यों ही नहीं, बल्कि सभी जीव-जन्तुओं में एक ही आत्मा का वास माना जाता है। हवाई जहाज में अपने बगल की सीट पर बैठे उस नवयुवक को देखकर मैं यह सोचने लगा कि आखिर यह कौन लोग हैं? किस समय और किस देश के नागरिक हैं? इनके मन में अपने से इतर व्यक्तियों के प्रति इतना तिरस्कार कहाँ से आ गया है? क्या इन्हें इसका ज़रा भी एहसास है कि ये खुद को असह्य अकेलेपन की एक ऐसी खाई में ढकेलने में लगे हैं जहाँ से कोई भी मनोचिकित्सक इन्हें बाहर नहीं ला सकेगा? शायद इन लोगों ने या तो कुछ अधिक धन कमा लिया है या ये किसी मुश्किल स्पर्धा के विजेता हों। दूसरे शब्दों में ये निश्चय ही हमारे समाज में नये-नये शुरू हुए वरीयतावाद (मैरिटोक्रेसी) के शिकार हैं। और इसी कारण अपने को फिजूल ही दूसरों से बड़ा या सफल या महत्वपूर्ण मानकर दूसरों की उपेक्षा के रास्ते खुद को असहाय और अकेलापन करने के मूर्खतापूर्ण और करुण व्यापार में लगे हुए हैं। मैं इनके प्रति रह-रहकर करुणा से भर जा रहा हूँ।■

ध्रुव शुक्ल
११ मार्च १९५३ को सागर में जन्म। कवि-कथाकार के तौर पर पहचान। 'उसी शहर में' और 'अमर टॉकीज' उपन्यास, 'खोजो तो बेटी पापा कहाँ हैं', 'फिर वह कविता वही कहानी', 'एक बूँद का बादल', 'हम ही हममें खेलें' कविता संग्रह, 'हिचकी' कहानी संग्रह प्रकाशित। राष्ट्रपति द्वारा कथा एवार्ड और कला परिषद् के रज़ा पुरस्कार से सम्मानित।
सम्पर्क : एम.आई.जी.-५४, कान्हा कुँज, कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.) ईमेल - kavi.dhruva@gmail.com

एक बेचारा शर्म का मारा

इस बढ़ती हुई बेशर्मी के दौर में ऐसे भी बहुत होंगे जो मारे शर्म के 'चुल्लू भर पानी में डूबकर मर जाना' चाहते होंगे। पर कहावतें आजकल लोगों पर कम ही असर डालती हैं। इसीलिए अब बहुत सारा पानी घरों तक आकर ही लोगों को डुबाने लगा है। अपने दुखों से उकताकर अब यह कोई नहीं कहता कि यह धरती फट जाये तो मैं उसमें समा जाऊँ। अब तो अपने दुखों से ऊबकर हमारी धरती ही चाहे जब फट जाती है। रोज ही उसमें कितनी बेशर्मी समाती चली जा रही है। बेशर्मों के साथ वे लोग भी अकाल मौत मर जाते हैं जिन्हें अभी भी शर्म आती है।

पर बात यहाँ राष्ट्रीय शर्म की हो रही है। तो पूरे राष्ट्र को ही इस बात पर शर्म आनी चाहिए कि देश कुपोषण का शिकार है। किसी एक आदमी के शर्मसार होने से कुछ नहीं होता। कुपोषण केवल आहार विषयक ही नहीं है, वह तो आचरण और विचारों तक फैल गया है। इसीलिए एक आदमी की शर्म को अर्थहीन करार देना स्वाभाविक है। जब जीवन, आचरण और विचार तीनों ही कुपोषित होने लगें तो समझो अन्त निकट है।

जीवन कुपोषित क्यों है? क्योंकि वह अपने पैरों पर खड़ा नहीं रह पा रहा है। कुम्हार माटी के घड़े बेचकर अपने परिवार के लिए पोषण की ज़रूरतें पूरी कर लेते थे। एक बसोर टोकनी बुनकर, एक मोची जूते बनाकर और एक लुहार अपनी धौंकनी की साँसों के भरोसे अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण कर लेता था। जुलाहे अब कितने कम हो गये हैं। यही हाल करघे के बुनकरों का है। ईंट पकाने वाले पक्की ईंट पकाकर घर और जीवन को मजबूत बनाये रख सकते थे। पर इनके तो पैर ही तोड़ दिए गये।

अब हम सरकारी अस्पताल में इनकी गर्भवती बीबियों को मुफ्त विटामिन्स की गोलियाँ बाँटते हैं। जिनके नकली होने पर सदा शंका बनी रहती

> *देश कुपोषण का शिकार है। किसी एक आदमी के शर्मसार होने से कुछ नहीं होता। कुपोषण केवल आहार विषयक ही नहीं है, वह तो आचरण और विचारों तक फैल गया है। इसीलिए एक आदमी की शर्म को अर्थहीन करार देना स्वाभाविक है।*

है। हम उन्हें और उनकी संतानों को दोपहर का भोजन भी देते हैं। कभी-कभी अनुभव में आता है कि अब साल सौ दिन का होने लगा है। अब सौ दिन की मजूरी से ही तीन सौ पैंसठ दिन का खर्च चलाना है। विडम्बना यह कि यह सब ठेकेदारों के भरोसे है। पोषण के नाम पर दाल में उबली हुई छिपकलियाँ निकलती हैं और मजदूरी पूरी नहीं मिलती। यह सब असहाय गरीबों के जीवन में कुपोषण के लिए काफी है। वे अपने वनों और गाँवों से पलायन करने को विवश हैं। उनका सुगठित जीवन महानगरों के फुटपाथों और झुग्गी बस्तियों में बिखर गया है।

आचरण का कुपोषण तो इतना शर्मनाक है कि रूह काँप उठती है। किसी भी राज्य व्यवस्था में श्रेष्ठ आचरण की अपेक्षा उनसे की जाती है जो राष्ट्र की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेने का दम भरते हैं। जीवन दर्शन की दृष्टि से विचार करें तो आचरण शरीर है और विचार उसका पोषक तत्व है। हम देख रहे हैं कि राजनीति में व्यापक जीवन का समर्थन करने वाले विचारों की कमी आ गयी है। शायद यही कारण है कि आचरण कुपोषित है।

जिस तरह हमारा पारंपरिक हुनरमंद समाज अपने पारस्परिक सहकार और सहयोग से एक ग्राम के जीवन को चला सकता है ठीक उसी तरह हमारे नेता पूरे देश को नहीं चला पा रहे हैं। इनके गठबन्धन सहयोग पर आधारित नहीं होते। वे तो एक-दूसरे की बैशाखियाँ बनकर उभरते हैं। हमारे देश का कोई भी राजनीतिक दल अपने पाँवों पर नहीं, दूसरों की बैशाखियों के सहारे खड़ा है। तभी तो एक अपाहिज और कुपोषित प्रजातंत्र हमें चारों तरफ से घेरे हुए है। एक दृष्टिहीन कुपोषित मानस किसी राष्ट्र का नेतृत्व कैसे कर सकता है?

कुपोषित बौद्धिक समुदाय भी हमारे देश में कम नहीं है। जो राष्ट्रीय बुद्धि अपनी धरती और अपने आँगन से पोषण नहीं लेती उस पर बाहरी फफूँद लग जाना स्वाभाविक है। उसे अपनी ब्रेड की फिक्र तो है पर गरीब देश के लोगों की रोटी की चिन्ता नहीं। कविताएँ और लेख लिखे जाते हैं। शोध भी होती ही रहती है पर जीवन के प्रति जूझ सकने का बोध नहीं जागता। सबके सब बार-बार अपना देश छोड़कर विदेश भागते हैं। उनका अपने देश लौट आना उनकी विदेश यात्राओं का प्रचार भर है। उनके इस बौद्धिक और आयातित कुपोषण ने देश का बहुत ही अहित किया है।

अहित की जिम्मेदारी किसी एक पर डालकर छुट्टी पा लेना अच्छी बात नहीं है। जिस तरह से हित ठीक उसी तरह अहित भी सब मिलकर ही तो करते हैं। सहकार और सहयोग दोनों जगह जरूरी है। राम-रावण युद्ध का कभी अन्त नहीं आता। रावण को मारकर बार-बार अयोध्या लौटना पड़ता है। इसीलिए तो राम होते रहते हैं।

कुपोषित बौद्धिक समुदाय भी हमारे देश में कम नहीं है। जो राष्ट्रीय बुद्धि अपनी धरती और अपने आँगन से पोषण नहीं लेती उस पर बाहरी फफूँद लग जाना स्वाभाविक है। उसे अपनी ब्रेड की फिक्र तो है पर गरीब देश के लोगों की रोटी की चिन्ता नहीं। कविताएँ और लेख लिखे जाते हैं। शोध भी होती ही रहती है पर जीवन के प्रति जूझ सकने का बोध नहीं जागता।

राम के होते रहने से ही राम राज्य की संभावना भी बनी रहेगी। राज्य कोई स्थायी समाधान नहीं है। वह तो सबके द्वारा स्वराज्य पा लेने के पहले का साधन है। जब-जब यह साधन सबके स्वराज्य के साध्य को भुलाकर उपयोग में लाया गया है इसे बार-बार मिटना पड़ा है। ताज्जुब है कि यह अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए सबके स्वराज्य के लिए काम करना भूल जाता है। यह राज्य सबके स्वराज्य की स्थापना करके एक बार पूरी तरह मर क्यों नहीं जाता। इस राज्य की मृत्यु ही उस स्वराज्य को जन्म दे सकती है जो जीवन के समस्त पोषक तत्वों का वाहक है। किसी एक की शर्म से काम नहीं चलेगा, शर्म तो अब सबको आनी चाहिए। तभी तो वह राष्ट्रीय शर्म कहलाएगी।■

सुधा दीक्षित
मथुरा में जन्म। अंग्रेजी साहित्य में एम.ए.। लखनऊ विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर एवं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. की उपाधि प्राप्त की। कविता एवं सृजनात्मक लेखन में विशेष रुचि। सम्प्रति - बंगलुरू में रहती हैं।
सम्पर्क : sudha_dixit@yahoo.co.in

भानुमती का कुनबा

बहुत बड़ा है भानुमती का परिवार। बिना प्लानिंग, बिना bulk material के, कहीं की ईंट और कहीं का रोड़ा उठाकर ही उसने कुनबा जोड़ लिया बस और बस गया वसुधैव कुटुम्बकम्।

समस्त संसार को कुटुम्ब मानना बड़ी अच्छी बात है, लेकिन पता है कुटुम्ब में क्या-क्या होता है? बहुत कुछ होता है- अच्छा-बुरा, खट्टा-मीठा, कड़वा सभी कुछ। करुण और श्रृंगार से लेकर वीभत्स तक सभी रस पाये जाते हैं। साम-दाम-दण्ड-भेद आदि सभी नीतियाँ तथा कूटनीतियाँ पाई जाती हैं। तो हम भी -

आज फुरसत से है, चिलमन से लगे बैठे हैं
खुनल भरी ये जमाने की हवा देख रहे है

विश्व में एक महाद्वीप है 'जम्मू द्वीप (Present day Asia)'। उसमें एक महान देश है- भारतवर्ष। भारतवर्ष में आजकल मौसम तो सर्दी का है, मगर गर्मी, हमारा मतलब है सरगर्मी छाई हुई है- चुनाव की सरगर्मी।

राजनीति भी वो आतिश है साहब कि लगाये तो लग जाये पर बुझाये न बने। जुलूस, नारे-बाजियाँ, भाषण। साथ ही दंगे-फसाद। इन सबके साथ कुछ लोग आग लगा रहे हैं, बाकी भड़का रहे हैं। कुछ बेचारे बुझाने की कोशिश भी कर रहे हैं। पूरा माहौल वीर-रस से ओत-प्रोत है। हम जरा डरपोक किस्म के बाशिन्दे हैं, अतः झरोखे के पीछे से छुपकर संजय का किरदार अदा कर रहे हैं। अरे वही महाभारत वाला संजय। अन्धे धृतराष्ट्र को संजय ने ही तो "दूरदर्शन (T.V.)" पर कौरवों और पाण्डवों के युद्ध का live telecaste देखकर running commentry सुनाई थी। वही हम कर रहे हैं।

देखिये, सभी पार्टियां मैदान में उतर आई हैं वोटों की भीख मांगने। जनता को हिदायत है -

सलाम कीजिये आली-जनाब आये हैं
ये पांच सालों का देने हिसाब आये हैं

जनता मुस्कुरा रही है, अब आया ऊंट पहाड़ के नीचे।

> समस्त संसार को कुटुम्ब मानना बड़ी अच्छी बात है, लेकिन पता है कुटुम्ब में क्या-क्या होता है? बहुत कुछ होता है- अच्छा-बुरा, खट्टा-मीठा, कड़वा सभी कुछ। करुण और श्रृंगार से लेकर वीभत्स तक सभी रस पाये जाते हैं।

> वास्तविक संत चुपचाप अपना काम कर रहे हैं अर्थात् मीडिया लहर से परे धर्म-कर्म में लीन हैं। अलबत्ता मशरूम की तरह उपजे हुये बरसाती संत अवश्य जनता में भक्ति-रस और अपने निजी आश्रम में श्रृंगार रास का संचार कर रहे हैं तथा अखबारों की सुर्खियों में शोभायमान हैं।

बड़े राजनेता कहलाने वाले ये छोटे आदमी अपने ही मुंह मियां मिट्ठू बन रहे हैं और दूसरों पर छींटाकशी कर रहे हैं। भाजपा कांग्रेस के चुनाव-चिह्न 'हाथ' को 'खूनी पंजा' करार दे रही है। हम पूछते हैं मोहतरम् आपका 'कमल' भी तो कीचड़ में ही उगता है। भले ही आपने अपना थोबड़ा कमल के समान मनभावन बना लिया हो, किन्तु आपके खुर (चरण कमल नहीं) तो भ्रष्टाचार के कीचड़ में ही धंसे हुये हैं।

कांग्रेस के नैतिक मूल्य लड़खड़ा कर जमीन चूम रहे हैं और देश में मंहगाई आकाश चूम रही है। पार्टी का अस्तित्व त्रिशंकू की तरह अधर में लटका है।

भाजपा ने एक सपनों का सौदागर जनता के सामने खड़ा करके नमो-नमो (नरेन्द्र मोदी) जपना शुरू कर दिया है। देखना है जैसे बाल्मीकि ने राम-राम की जगह मरा-मरा जप कर भवसागर पार कर लिया था, भाजपा का नमो-नमो कहीं मो-ना, मो-ना (मोदी ना) बनकर उनकी नैया न डुबा दे। खैर यह तो वक्त ही बतायेगा। हम तो फिलहाल यही कह सकते हैं-

हमें मालूम है सपनों की हकीकत लेकिन
दिल के बहलाने को मोदी का खयाल अच्छा है

मोदी-लहर है इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। यह झंझावात असली है या blower चलाकर पैदा किया गया है? देखते हैं। वैसे जहां मोदी नाम की आँधी ने बड़े-बड़े बरगद (कांग्रेस) और अन्य ऊंचे दरख्त गिरा दिये, वहां एक नन्हा-सा पौधा अंकुरित हुआ और उसने जता दिया -

हम वो पत्ते नहीं जो शाख से गिर जायेंगे
आंधियों से कहो औक़ात में रहना सीखे

वाह! चौंका दिया न सबको।

कांग्रेस किंकर्तव्यविमूढ़ होकर नेपथ्य में चली गई introspection करने -

वो जितनी खुद-नुमाई कर रहे थे
अब उतनी जग हँसाई कर रहे हैं

भाजपा नमो की लहर पर सवार होकर डूबने से तो बच गई पर साहिल तक भी नहीं पहुंची -

किस्मत की ख़ूबी देखिये टूटी कहाँ कमबख्त
दो चार हाथ जबकि तबे-बाम रह गया

सभी थाली के बैगन इधर-उधर लुढ़क रहे हैं। खरबूज़े रंग बदल रहे हैं। 'आम' हमेशा की तरह लोकप्रिय सिद्ध हो रहा है। विचित्र किन्तु सत्य बात तो यह है कि जहां पहले हर पार्टी कुर्सी हथियाने के लिये एक-दूसरे पर गिरी पड़ती थी वहां अब 'आम' आदमी (AAP) के आने से तहजीब के दायरे में पेश आ रही है। सरकार बनाने के मामले में पहले आप, पहले (लखनवी अंदाज में) कह रही है। शीला दीक्षित चुनमुना रही हैं अगर किसी को भी कुर्सी पर नहीं बैठना था तो हमें क्यों हटाया? अन्ना फिर से अनशन पर उतर आये हैं। परन्तु आम आदमी (AAP) का विरोध करके, अपने सारे किये-धरे पर पानी फेर रहे हैं। उन्हें पता होना चाहिये कि बिना सत्ता की ताकत के वे न तो भ्रष्टाचार का उन्मूलन कर सकते हैं न ही भ्रष्टाचारी का (शायद बाल धूप में सफेद किये थे) गाँधी जी के अनशन सफल हुये थे क्योंकि नेहरू, पटेल आदि दिग्गज उनकी मुट्ठी में थे (उनके बालों का जिक्र यहां बेमानी है) खैर Just wait and watch, आगे-आगे देखिये राजनीति का ऊँट किस करवट बैठता है।

भानुमती का कुनबा चूँकि भारतीय है तो धर्म-संस्थापनार्थाय संभावित धर्म-गुरुओं से कैसे बचा जा सकता है। वास्तविक संत चुपचाप अपना काम कर रहे हैं अर्थात् मीडिया लहर से परे धर्म-कर्म में लीन हैं। अलबत्ता मशरूम की तरह उपजे हुये बरसाती संत अवश्य जनता में भक्ति-रस और अपने निजी आश्रम में श्रृंगार रास का संचार कर रहे हैं तथा अखबारों की सुर्खियों में शोभायमान हैं। समस्त सच्चाई से अवगत होकर भी जो कुछ लोग पाखण्डी आसाराम तथा नारायण साईं को सहयोग दे रहे हैं वे ये सभी भाई-बहन जो स्वयं को धर्म का ठेकेदार समझते हैं, धर्म के नाम पर महज जनता को उल्लू बनाते हैं। ये धर्म नहीं सियासत के कर्ता-धर्ता हैं। इनका divide व rule वाला formut इस हद तक पहुंचा है कि -

नफ़रतों का असर देखो
जानवरों का बंटवारा हो गया
गाय हिन्दू हो गई
बकरा मुसलमां हो गया।

धार्मिकता का यह आलम देखकर नई पीढ़ी धर्म से विमुख होती दृष्टिगोचर हो रही है तथाकथित भारतीयता रसातल को जाती नजर आती है। हमने भी हथियार डाल दिये। सोचा- "पोथी और किताबों ने तो अक्सर मन पर बोझ दिया, मन बहलाने की खातिर ही बच्चे की शैतानी लिख।" तो साहब हमने बेटे को पकड़ लिया। बेटे तुम तो बहुत ज़हीन हो। ज़रा संस्कृत में लिखी इस लाइन का अर्थ बताओ। 'तमसो मां ज्योर्तिगमय'। बेटा बोला easy है। तुम सो जाओ माँ मैं ज्योति को लेकर जाता हूं। हमने सर पकड़ लिया। भागते हुए बेटे को फिर पकड़ा और कहा 'संस्कृत छोड़ो बेटा हिन्दी पर आ जाओ। सूरदास की रचनायें पढ़ी है?' बेटे ने affirmative में सर हिलाया। तो चलो इसका अर्थ बताओ -

मैया मैं नहीं माखन खायो
ग्वाल-बाल सब बैर पड़े हैं
बरबस मुख लपटायो
सूरदास तब विहँसि यशोदा
लै उर कंठ लगायो।

'ओ हो मां very simple कृष्ण जी कह रहे हैं कि मां मैंने butter नहीं चुराया। वो तो मेरे दोस्त मुझसे जलते हैं, उन्होंने जबरदस्ती मेरे मुंह पर मक्खन लगा दिया।' हम बड़े imprss हुये। वाह क्या बात है, very good, चलो आगे बताओ। बेटे ने गर्व से छाती फुलाकर हमें देखा और कहा- 'आगे तो और भी आसान है माँ। तब हंसते हुये सूरदास ने यशोदा को अपने गले से लगा लिया, simple." हमारा उतरा हुआ मुंह देखे बिना ही बेटा प्रसन्न वदन खेलने चला गया।

अब समझ में आया कि हमारे मास्टर जी पर क्या बीती होगी जब स्कूल में भजन सुनाने के लिये कहने पर हमने पुरजोर आवाज में तान लगाई थी- "क्या मिल गया भगवान तुझे दिल को दुखा के। अरमान की नगरी में मेरी आग लगा के।"

हम तो पिटाई के बाद सुधर गये परन्तु आजकल तो बच्चों को पीट भी नहीं सकते। इसीलिये बच्चों की उद्दंडता का ये आलम है कि कक्षा में मास्टर जी ने पूछा 'चाँद पर पहला कदम किसने रखा था?' पूरी क्लास ने जोर से कहा नील आर्नस्ट्रोंग ने। 'वाह' मास्टर जी खुश हो गये और दूसरा? अगला प्रश्न था। कक्षा का एक दबंग बालक खड़ा हुआ, मास्टर जी को ऐसे दया-भाव से देखा जैसे उसे उनकी बुद्धिहीनता पर विश्वास नहीं हो रहा हो, बोला "मास्टर जी दूसरा कदम भी उसी ने रखा होगा। वह वहां लंगड़ी खेलने थोड़े ही गया था।" मास्टर जी के मुखारबिन्द से मुस्कान उतरकर विद्यार्थियों के चेहरों पर विराजमान हो गई।

यहां तक तो गनीमत है। उस बच्चे का क्या करें जो स्कूल से भागकर घर आता है और दादा जी को पटा लेता है। दादा जी ने भले ही अपने बच्चों की भरपूर पिटाई की हो (स्कूल न जाने पर) पर पोता आखिर पोता है (सूद मूल से ज्यादा प्यारा होता है) अचानक School के Head Master को घर की ओर आते देख उन्होंने पोते से कहा 'बेटा छुप जाओ, तुम्हारे Principale आ रहे हैं।' पोता बोला 'दादा जी आप छुप जाइये। मैंने Heat Master जी से कहा था कि मेरे दादाजी मर गये हैं इसीलिये छुट्टी चाहिये।'

सच कहें तो इन नौनिहालों का भी कसूर नहीं है-

समन्दर जितना Syllabas है
नदी जितना पढ़ पाते हैं
बाल्टी जितना याद रहता है
गिलास जितना लिख पाते हैं
चूल्लू भर नम्बर आते हैं
उसी में डूब कर मर जाते हैं।

वैसे चुल्लू भर पानी में डूब मरने की जरूरत हमारे नौनिहालों को नहीं, बल्कि देश के (कुटुम्ब के) कर्णधारों को है। इन नाखुदाओं ने जो हालात बना रखे हैं वहां-

अब ऐसी शिकस्ता कश्ती में
साहिल की तमन्ना कौन करे?

अब चूँकि आशा पर संसार स्थित है इसलिये तमन्ना की डोर को छोड़ा नहीं जा सकता। मत छोड़ो साहब, लेकिन प्रयास करना भी मत छोड़ो। खैर हमारा काम भाषण देना नहीं है, वाकयात को आपके मद्देनजर रखना है। और आलम ये है कि -

सब चाहते हैं मंज़िलें पाना चले बग़ैर
जन्नत भी सबको चाहिये, लेकिन मरे बग़ैर। ■

> *कक्षा का एक दबंग बालक खड़ा हुआ, मास्टर जी को ऐसे दया-भाव से देखा जैसे उसे उनकी बुद्धिहीनता पर विश्वास नहीं हो रहा हो, बोला "मास्टर जी दूसरा कदम भी उसी ने रखा होगा। वह वहां लंगड़ी खेलने थोड़े ही गया था।"*

ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव

लेखक-समीक्षक, साहित्य एवं कला, विज्ञान एवं अध्यात्म, ज्योतिष एवं वास्तु, ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्माण्ड विज्ञान जैसे विविध विषयों पर निरंतर लेखन. ५० से अधिक शोध-पत्र विश्वविद्यालयों व राष्ट्रीय संगोष्ठियों में प्रस्तुत। विश्वविद्यालय में अतिथि अध्यापन का सुदीर्घ अनुभव। आजीवन सदस्य : ग्वालियर एकेडेमी ऑफ मैथमेटिकल साइंसेज, इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली।

सम्पर्क : २६९, जीवाजी नगर, ठाठीपुर, ग्वालियर-४७४०११

ईमेल - brijshrivastava@rediffmail.com मोबाइल - ९४२५३६०२४३

चिन्तन

ज्योतिष की दशा और दिशा-५

सृष्टि की कालगणना : किसका गणित सही है?

कभी इस पर ध्यान दिया आपने कि जब कोई शुभ कार्य या मंत्र पाठ आदि करने का विचार व्यक्ति करता है तो इसे आरंभ करने के पूर्व एक संकल्प मंत्र पढ़ने की सनातनधर्मी परंपरा है। इस संकल्प में क्या बोला जाता है और क्यों? क्या इस धार्मिक परम्परा का अब भी कोई सम-सामयिक या वैज्ञानिक अर्थ है? इस संकल्प वाक्यों में लम्बी-चौड़ी कालगणना का उल्लेख होता है जो सृष्टि के वर्तमान संस्करण अर्थात कल्प से आरंभ होकर मन्वन्तर महायुगादि से होती हुई वर्तमान दिन व क्षण तक को अपने में समेटे रहती है। इसी प्रकार पृथ्वी पर द्वीप खण्ड देश-प्रदेश नगर व घर के पते तक का ब्यौरा भी इसमें शामिल रहता है।

देश और काल के इस व्यापक सन्दर्भ से स्वयं को जोड़कर कोई कार्य आरंभ किया जाता है। हम अधिकतर इस संकल्प मंत्र के देश और काल Space and Time के इस विराट और सूक्ष्म विवरण पर ध्यान नहीं देते। प्रस्तुत आलेख में इस संकल्प मंत्र के देशकाल के विवरण की खगोल गणितीय और मनोवैज्ञानिक दोनों की वैज्ञानिकता और इसके औचित्य सभी की विवेचना आपके साथ मिलकर की जा रही है। निष्कर्ष क्या निकलता है और इस निष्कर्ष का आज की उपयोगितावादी व्यवस्था में 'फायदा' क्या है इस पर निर्णय आपको ही करना है।

> *भारतीय कालगणना को विश्व के कास्मोलॉजी साइंटिस्ट अब 'राइट टाइम स्केल' वाली एकमात्र कालगणना मानते हैं। इसलिए हनुमान जी की तरह अपनी क्षमता को भूले हुए हम भारतीयों को पश्चिमी ब्रह्मांड वैज्ञानिकों का यह प्रमाण-पत्र जाम्बवान के स्मरण मंत्र से कम नहीं मानना चाहिए।*

परन्तु इसके पहले कि आप यह पृष्ठ पौराणिकता पोषक कहकर पलटें, यह जान लें कि संकल्प मंत्र में वर्णित भारतीय कालगणना को विश्व के कास्मोलॉजी साइंटिस्ट अब 'राइट टाइम स्केल' वाली एकमात्र कालगणना मानते हैं। इसलिए हनुमान जी की तरह अपनी क्षमता को भूले हुए हम भारतीयों को पश्चिमी ब्रह्मांड वैज्ञानिकों का यह प्रमाण-पत्र जाम्बवान के स्मरण मंत्र से कम नहीं मानना चाहिए।

विलक्षण रूप से वैज्ञानिक है भारतीय कालगणना : सृष्टि के आरंभ होने और प्रलय को प्राप्त होने की कालगणना प्रत्येक पुराण में दी गई है। सृष्टि प्रकरण पुराण होने का अनिवार्य लक्षण है। इसके अतिरिक्त भारतीय खगोल विज्ञान के प्राचीनतम ग्रंथ 'सूर्य सिद्धांत' में भी सृष्टि गणना दी गई है। यहाँ हम केवल गीता के आठवें अध्याय के श्लोक १६-१८ में वर्णित कालगणना को आधार बना कर चर्चा कर रहे हैं

ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युग की अवधि का है और ब्रह्मा की एक रात भी एक हजार चतुर्युग की अवधि की है। ब्रह्मा के दिन का आरंभ होने पर समस्त पंचभूतात्मक सृष्टि का भी आरंभ होता है और उनका उत्तरोत्तर विकास भी होता है। तत्पश्चात दिन अर्थात एक हजार चतुर्युग का समय बीतने पर प्रलयकालीन रात्रि आरंभ हो जाती है जिसमें सृष्टि का क्रमशः लोप हो जाता है।

क्योंकि गीता अधिकतर पाठकों को सुलभ है।

ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युग की अवधि का है और ब्रह्मा की एक रात भी एक हजार चतुर्युग की अवधि की है। ब्रह्मा के दिन का आरंभ होने पर समस्त पंचभूतात्मक सृष्टि का भी आरंभ होता है और उनका उत्तरोत्तर विकास भी होता है। तत्पश्चात दिन अर्थात एक हजार चतुर्युग का समय बीतने पर प्रलयकालीन रात्रि आरंभ हो जाती है जिसमें सृष्टि का क्रमशः लोप हो जाता है।

सूर्य सिद्धान्त आदि ग्रंथों से हम जानते हैं कि ब्रह्मा के एक दिन को कल्प कहते हैं और एक रात को भी कल्प कहते हैं इस प्रकार दो कल्पों से मिलकर यह दिन और रात बनता है जिसे श्लोक १७ में अह+रात्र कहा गया है। काल के इस विवेचन को जानने वाले को गीता में अहोरात्र विद् कहा गया है।

कल्प की एक हजार वर्ष की चतुर्युगी का गणित देखते हैं जिसे हम सरलता के लिए दो तरह से जानेंगे। पहले दिव्य वर्ष के आधार पर गणना करते हैं। दिव्य वर्ष क्या है? हमें ज्ञात है कि ध्रुव प्रदेशों में सूर्य क्षितिज से नीचे नहीं जाने से वहाँ छह मास का दिन और छह मास की रात्रि होती है। उत्तरायण सूर्य में उत्तरी ध्रुव क्षेत्रों में छह मास तक दिन जैसा उजाला और दक्षिणी ध्रुव क्षेत्रों में छह मास तक रात का अंधेरा रहता है। दक्षिणायन में यह क्रम उलट जाता है। इससे ही देवताओं का एक दिव्य दिन बनता है। वस्तुतः इसमें दिव्य जैसा कुछ नहीं है। यह कालगणना का संक्षिप्तीकरण मात्र है -

उत्तरायण = १ दिव्य दिन = ६ मानव छह मास

दक्षिणायन = १ दिव्य रात = ६ मानव छह मास

उत्तर + दक्षिणायन = १ दिव्य दिन रात = १ मानक वर्ष या १२ मास

१ दिव्य वर्ष = ३६० मानव वर्ष (वर्ष में यहाँ वृत्त के ३६० अंश अनुसार ३६० दिन लिए जाते हैं)

उपरोक्त का सार यह है कि १ दिव्य वर्ष = ३६० मानव वर्ष। अर्थात दिव्य वर्ष को मानव वर्ष बनाने के लिए ३६० का गुणा करना होगा।

१ चतुर्युग में चार युग सत्य, त्रेता, द्वापर, कलियुग होते हैं। चतुर्युग को महायुग भी कहते हैं। एक महायुग (या चतुर्युग) में १२ हजार दिव्य वर्ष होते हैं। इन दिव्य वर्षों की मानव वर्ष में गणना :

१ महायुग = १२,००० दिव्य वर्ष x ३६० = ४३,२०,००० (तेतालीस लाख बीस हजार) वर्ष

१००० महायुग (कल्प) = ४३,२०,००० मानव वर्ष x १००० = तेतालीस लाख बीस हजार पर ३ शून्य बढ़ाने पर संख्या ४३,२०,०००,००० अर्थात ४ अरब ३२ करोड़ मानव वर्ष हुई।

इस प्रकार ब्रह्मा की एक सृष्टि (१ कल्प) अर्थात ४ अरब ३२ करोड़ मानव वर्ष की है तथा इतना ही समय (१ कल्प) इसके प्रलय होने में लगता है अर्थात कुल ४,३२ + ४३२ + ८ अरब ६४ करोड़ वर्ष सृष्टि + प्रलय के हुए। अंग्रेजी में इसे ८६४ बिलियन वर्ष कहेंगे। इस प्रकार ब्रह्मा का एक दिन-रात २ कल्पों का या ८ अरब ६४ करोड़ वर्ष का होता है।

यदि आप एक चतुर्युग या महायुग में कलि आदि चारों युगों का मानव वर्षों में मान जानना चाहते हैं तो यह अत्यन्त सुगम है। एक महायुग के १२ हजार दिव्य वर्षों का १/१० एक बटा दस अर्थात् १२०० दिव्य वर्ष (अर्थात् ४ लाख ३२ हजार मानव वर्ष) में चार युगों का मान इस प्रकार है (मानव वर्ष में)

कलियुग = १२०० x १ = १२०० x ३६० = ४ लाख ३२ हजार वर्ष

द्वापर = १२०० x २ = २४०० x ३६० = ८ लाख ६४ हजार वर्ष

त्रेता = १२०० x ३ = ३६० x ३६० = १२ लाख ६४ हजार वर्ष

सत्य = १२०० x ४ = ४८०० x ३६० = १७ लाख २८ हजार वर्ष

इसी गणित के अनुसार ब्रह्मा की आयु, एक दिन रात को मिलाकर ३६० दिन-रात के एक वर्ष और इस प्रकार के १०० ब्रह्म वर्ष की होती है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि ब्रह्मा काल की एक इकाई है क्योंकि १०० ब्रह्मा वर्ष बीतने पर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा भी निःशेष हो जाते हैं। ब्रह्मा की आधी आयु के ५० वर्ष को परार्द्ध कहते हैं। युगों के आधार पर मन्वन्तर होते हैं जो सृष्टि के उत्तरोत्तर स्थूल से सूक्ष्म की ओर मनुष्य के विकास को बताते हैं पर इनकी चर्चा यहाँ नहीं कर रहे हैं। सरलता की दृष्टि से यहाँ केवल स्थानीय सृष्टि के एक कल्प के आविर्भाव और तिरोभाव की ही बात की जा रही है। क्योंकि भारतीय सृष्टि विज्ञान में प्रकृति या पदार्थ नष्ट नहीं होता स्थूल से सूक्ष्म में व्यक्त से अव्यक्त में असत से सत में रूपान्तरित मात्र होता है।

पाश्चात्य ब्रह्मांड वैज्ञानिकों की दृष्टि में भारतीय सृष्टि गणित : वैज्ञानिक कार्ल सागान Carl Sagan, उस टीम के सदस्य हैं जिसने मंगलग्रह पर वाइकिंग स्पेस क्राफ्ट उतारा है, कारनेल विश्वविद्यालय से संबद्ध कार्लसागान पुलिट्जर पुरस्कार विजेता हैं। उन्होंने Cosmos अर्थात ब्रह्मांड नाम से खगोल विज्ञान पर तेरह भागों में टेलीविजन धारावाहिक बनाया जिसे २० करोड़ दर्शकों ने देखा। इस कास्मोस धारावाहिक में उन्होंने एक एपीसोड भारत की हिन्दू कास्मोलॉजी या हिन्दू ब्रह्मांड विज्ञान पर भी केन्द्रित किया।

कार्लसागान का कहना है (इसे आप wikipedia.org/wiki/Hindu Cosmology Care Sagan पर अंग्रेजी में देख सकते हैं) कि 'कास्मोस का यह एपीसोड भारत पर केन्द्रित करने का मुख्य कारण हिन्दू ब्रह्मांड विज्ञान की वह अद्‌भुत दृष्टि है जो हमें सबसे पहले पृथ्वी का टाइमस्केल-कालावधि और इस विश्व का टाइमस्केल देती है जो आधुनिक ब्रह्माण्ड विज्ञान से पूरी तरह मिलती है।'

'हम जानते हैं कि पृथ्वी लगभग ४.६ बिलियन वर्ष पुरानी है और ब्रह्माण्ड या इसका वर्तमान अवतार १० से २० बिलियन जैसे ही कुछ वर्ष पुराना है। हिन्दू परम्परा में ब्रह्मा का एक दिन और रात इसी समय सीमा का है, ८६४ बिलियन वर्ष का है।' (४ अरब ३२ करोड़ + ४ अरब ३२ करोड़ मानव वर्ष जैसा कि गणना से आता है)

"जहाँ तक मुझे ज्ञात है पृथ्वी पर यही एकमात्र प्राचीन धार्मिक परम्परा है जो एकदम शुद्ध सही कालगणना की बात करती है : As far as I Know it is the only religious tradition on earth, which talks about the right time scale. 'हम शुद्ध-सही कालक्रम की इस अवधारणा की तह में जाना चाहते हैं और दिखाना चाहते हैं कि यह अ-स्वाभाविक नहीं है।' कार्लसागान आगे कहते हैं : 'पश्चिम में इस विश्व के संबंध में जो विचार लोगों को स्वाभाविक लगता है वह यह कि

जेनेवा में गाड पार्टिकल की खोज में लगी संस्था यूरोपियन सेंटर फॉर रिसर्च इन पार्टिकल फिजिक्स CERN के प्रांगण में नटराज शिव प्रतिमा

> "आधुनिक ब्रह्मांड विज्ञान और एस्ट्रोफिजिक्स जहाँ तक खोज कर सका है उससे तो यही सिद्ध होता है कि ब्रह्मांड अनन्त ही है उनमें हमसे भिन्न जीव रहते होंगे, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता।"

यह विश्व कुछ हजार वर्ष पुराना है। इसमें बिलियन (अरब) की गणना उनकी कल्पना से परे है, इसे तो कोई समझ ही नहीं सकता। हिन्दू अवधारणा बहुत ही स्पष्ट है, यही है एक महान संस्कृति जिसने हमेशा बिलियन वर्षों की बात (ब्रह्मांड के सन्दर्भ में) की है।' वह कहते हैं : 'और अन्त में, हिन्दू कास्मोलॉजी का बिलियन वर्ष आधारित कालक्रम ब्रह्माण्ड का पूरा इतिहास नहीं है, बल्कि ब्रह्मा का केवल दिन और रात मात्र है, ब्रह्माण्ड के आविर्भाव और तिरोभाव के (जन्म मृत्यु

> संकल्प को अधिक सशक्त बनाने के लिए सामूहिक संकल्प पर जोर दिया जाता है। विवेकानन्द, गांधी, सुभाष, मार्टिन लूथर इत्यादि के संकल्प में जनसंकल्प जुड़ने से ही असम्भव सम्भव बन सका।

के) अनन्त चक्र हैं और ब्रह्मांड अनन्त संख्याओं में हैं जिनके अपने-अपने नियंत्रक अधिष्ठाता हैं।'

कार्ल सागान का हिन्दू कास्मोलॉजी पर व्याख्यान व साक्षात्कार कई वेबसाइट पर उपलब्ध है।

वस्तुतः भारतीय सृष्टि विज्ञान में जो कि पुराणों में भी अपने-अपने ढंग से व्याख्यायित है, अनन्त ब्रह्मांडों की अवधारणा की गई है। जैसे गूलर के वृक्ष पर असंख्य गूलर के फल होते हैं, उन फलों को ब्रह्मांड समझना चाहिए और गूलर के भीतर जिस तरह सूक्ष्म जीव होते हैं उन्हें उस गूलर फल रूपी ब्रह्मांड के निवासी जानना चाहिए। एक गूलर फल का निवासी अपने से भिन्न गूलर-ब्रह्मांड के बारे में क्या जान सकता है? फिर ब्रह्मांड भी अलग-अलग स्तर के हैं। योग वाशिष्ठ में एक ब्रह्मांड को वेध करते समय मिलने वाले आवरणों की चर्चा है। वैष्णव मत आधारित पुराण में प्रसंग है कि नारद आदि कृष्ण के दर्शन करने बैकुण्ठ लोक पहुँचे तो वहाँ द्वारपाल सखी चन्द्राननना ने उनसे पूछा कि वे किस ब्रह्मांड के किस लोक से आए हैं। इस प्रकार के 'आईकार्ड' के लिए नारद आदि ऋषि तैयार नहीं थे तब द्वारपाल ने कहा कि देखो इस बैकुण्ठ लोक की विरजा नदी में कितने ब्रह्मांड कंकड़, पत्थर की तरह लुढ़क रहे हैं इसलिए आप अपना 'पता' बताएँ। इस पर उन्होंने कहा कि वामन अवतार में जिनके नख से ब्रह्मांड में निशान बन गया था उस ब्रह्मांड के हम निवासी हैं। यह आख्यान हमें अतिरंजित या कल्पित लग सकता है पर आधुनिक ब्रह्मांड विज्ञान और एस्ट्रोफिजिक्स जहाँ तक खोज कर सका है उससे तो यही सिब्द्ध होता है कि ब्रह्मांड अनन्त ही है उनमें हमसे भिन्न जीव रहते होंगे, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। योगी कथामृत में योगी नित्यानन्द गिरि ने परमहंस योगानन्द के प्रश्नों के उत्तर में कई तरह के उच्चतर लोकों के अस्तित्व की पुष्टि की है।

सृष्टि के इस अनवरत घूर्णायमान चक्र को दर्शाने के लिए इसे ललितपूर्ण और बोध गम्य बनाने के लिए धार्मिक क्षेत्र में कई तरह की संकल्पनाएँ की गई हैं। सृष्टि पूर्व प्रलयकालीन एकार्णव जल में वट के पत्ते पर विराजमान बालकृष्ण, क्षीरसागर में शयनरत विष्णु की नाभि से निकले कमल पर आसीन सृष्टि हेतु तपस्या करते ब्रह्मा, सृष्टि स्थिति विनाश रूपिणी शक्ति एवं डमरू के नाद से सृष्टि तथा अग्नि से संहार की नृत्य मुद्रा में नटराज शिव ये सभी सृष्टि के गणित का रूपांकन जैसा ही है।

यही कारण है कि अमेरिकी भौतिकविद् और 'ताओ ऑफ फिजिक्स' के लेखक फ्रिट्जॉफ काप्रा ने पुस्तक में लिखा है कि एक दिन अचानक उन्हें समस्त संसार पदार्थ के सूक्ष्म कणों का नृत्य जैसा लगा जैसे यह शिव का नृत्य हो इसलिए उन्होंने पुस्तक में नटराज का चित्र भी दिया है। आपको यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि सृष्टि निर्माता भौतिक कण God Particle की खोज करने वाली संस्था CERN यूरोपियन सेन्टर फॉर रिसर्च इन पार्टिकल फिजिक्स जेनेवा के द्वार पर नटराज शिव की प्रतिमा स्थापित है जिसमें काप्रा के ये वाक्य भी लिखे हैं - For the modern physicist then, Shiva's dance is the dance of subtomic particles.

संकल्प मंत्र में देशकाल दर्शन का औचित्य : प्रत्येक घटना और प्रत्येक पदार्थ की स्थिति देश और काल Space and Time में ही सम्भव होती है। इसलिए विराट देशकाल से स्वयं के संकल्प को जोड़ने से वह संकल्प ऊर्जावान होकर असरकारक हो उठता है। संकल्प को अधिक सशक्त बनाने के लिए सामूहिक संकल्प पर जोर दिया जाता है। विवेकानन्द, गांधी, सुभाष, मार्टिन लूथर इत्यादि के संकल्प में जनसंकल्प जुड़ने से ही असम्भव सम्भव बन सका। ब्रह्मा के 'कल्प' से ही संकल्प, कल्पना, संकल्पना जैसे शब्दों का अर्थ सृजनात्मकता से जुड़ता है।

सृष्टि क्रम और हमारा वार्षिक कैलेण्डर : यदि हम भारतीय सृष्टि गणना क्रम को अपने वार्षिक कैलेण्डर का आधार बनाते हैं तो इसमें धर्म सम्प्रदाय जैसा कुछ भी नहीं है। इस गणना के अनुसार ब्रह्मा की आयु का आधा भाग अर्थात् परार्द्ध बीत चुका है, सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर है, २७ महायुग बीत गए हैं तथा २८ वाँ महायुग चल रहा है इसमें सत्य, त्रेता, द्वापर बीत चुके हैं, कलियुग के ४ लाख ३२ हजार वर्ष में से ५११४ वर्ष गुजर चुके हैं तथा कलियुग का ५११५ वाँ वर्ष १४ अप्रैल २०१४ से आरम्भ हुआ है। इसमें विक्रम सम्वत्सर २०७० व्यावहारिक रूप से आरम्भ है। गाजियाबाद के आर्ष तिथि पत्रक अनुसार सृष्टि के आरम्भ से अब तक १ अरब ९७ करोड़ २९ लाख ४९ हजार ११६ वर्ष व्यतीत हुए हैं (२०१४ में)। व्यवहार में कलियुग आधारित या कम से कम विक्रम सम्वत्सर लेने से हम सृष्टिचक्र की वास्तविक धर्मनिरपेक्ष गणना से ही जुड़ेंगे जो हर तरह से वैज्ञानिक सिद्ध है।■

मनोज कुमार श्रीवास्तव

विचारशील लेखक के तौर पर ख्याति. गद्य एवं पद्य पर समान अधिकार. कविता के संसार से अलग, उनका गद्य विचार जगत की गहराईयों में जाता है. अपनी परम्परा से निरंतर संवाद करता इनका लेखन आधुनिकता के प्रचलित मुहावरों से भी बाहर जाता है. प्रकाशित कृतियां : कविता संग्रह - 'मेरी डायरी से', 'यादों के संदर्भ', 'पशुपति', 'स्वरांकित' और 'कुरान कविताएँ'. 'शिक्षा के संदर्भ और मूल्य', 'पंचशील वंदेमातरम्', 'यथाकाल' और 'पहाड़ी कोरबा' पर पुस्तकें प्रकाशित. 'सुन्दरकांड' के पुनर्पाठ पर छह खण्ड प्रकाशित. दुर्गा सप्तशती पर 'शक्ति प्रसंग' पुस्तक प्रकाशित. सम्प्रति : १९८७ संवर्ग के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी.

सम्पर्क : shrivastava_manoj@hotmail.com

व्याख्या

कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च

मिले तो निर्भरा भक्ति, हटें तो कामादि दोष। तुलसी ने इस पंक्ति में 'आदि' शब्द का बहुत अर्थगर्भी प्रयोग किया है। नारायण पंडित (हितोपदेश) में छः दोष गिनाते हैं : **'षड्दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता/निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता'**- निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और ढिलाई इन छः दोषों को त्याग दें। एक अन्य संस्कृत श्लोक में कहा गया : **'अलसो मन्दबुद्धिश्च सुखी च व्याधिपीड़ितः/निद्रालुः कामुकश्चैव षडेते शास्त्रवर्जिताः'** कि आलसी, मंदबुद्धि, सुखी, रोगी, निद्रालु तथा कामी- ये छह शास्त्रों द्वारा वर्जित हैं। संयुत्तनिकाय (१/१/७६) में पुनः छः छिद्रों की परिगणना है- **'आलस्यं च पमादो च, अनुट्ठानं असंयमो/निद्दा तन्दा च ते छिद्दे, सत्वसो तं विवज्जये'** कि 'आलस्य, प्रमाद, उत्साहहीनता, असंयम, निद्रा और इन छः छिद्रों को पूर्णतया छोड़ देना चाहिए।' चरक संहिता में भी दोषों की अपनी गणना है : **'वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शरीरो दोषसंग्रहः/ मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च'** कि वात, पित्त और कफ शारीरिक रोगों के कारण हैं और इनका नाम दोष है। रजोगुण और तमोगुण मानसिक दोष हैं। लेकिन तुलसी दो-तीन-छः की गणना में नहीं लगते। वे 'आदि' से जब अपना काम चलाते हैं तो शायद यह भी कह रहे हैं कि दोष-गणना व्यर्थ की चीज है। दोष किसी संख्या में सीमित नहीं हैं। तुलसी वाल्मीकि की तरह यहां **'त्रयो दोषाः क्षयावहाः'** तीन विनाशकारी दोषों की भी बात नहीं करते। हालांकि रामचरितमानस में तुलसी एक जगह कहते हैं : **'तात तीनि अति प्रबलखल/काम क्रोध अरु लोभ।'** लेकिन यहां वे संख्या तो खैर नहीं ही बताते, दोषों के नाम गिनाने से भी बचते हैं। स्कंदपुराण के प्रभास खंड में कहा गया है-

कामः क्रोधश्च लोभश्च मोहो मद्यमदादयः।
मायामात्सर्यपैशुन्यम विवेकोऽविचारणा।।
अन्धकारो यदृच्छा च चापल्यं लोलता नृप।
अत्यायासोऽप्यनायासः प्रमादो द्रोहसाहसम्।।
आलस्यं दीर्घसूत्रत्वं परदारोपसेवनम्।
अत्याहारो निराहारः शोकश्चौर्यं नृपोत्तम।।
एतान् दोषान् गृहे नित्यं वर्जयन् यदि वर्तते।
स नरो मण्डनं भूमेर्देशस्य नगरस्य च।।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद्यपान, मद आदि, कपट-छल, डाह, चुगलखोरी, अविवेक, विचारशून्यता, तमोगुण, स्वेच्छाचार, चपलता, लोलुपता, अत्यधिक प्रयास, अकर्मण्यता, प्रमाद, दूसरों के साथ द्रोह करने में आगे रहना, आलस्य, दीर्घसूत्रता, परस्त्री से अनुचित संबंध, बहुत अधिक खाना, कुछ भी न खाना, शोक चोरी-इन दोषों से बचा रहकर जो अपना जीवन बिताता है वह मानव पृथ्वी, देश तथा नगर का भूषण है।

नारदपुराण के पूर्वभाग, प्रथमपाद में भी कहा गया-

नास्त्यत्यकीर्तिसमो मृत्युर्नास्ति क्रोधसमो रिपुः।
नास्ति निन्दासमं पापं नास्ति मोहसमासवः।।
नास्त्यसूया-समाकीर्तिर्नास्ति कामसमोऽनलः।
नास्ति रागसमः पाशो नास्ति संग-समं विषम्।।

लेकिन तुलसी 'आदि' कहकर यह तो हासिल कर ही लेते हैं कि वे दोषों की किसी भी किस्म की परिधि नहीं बांधते। उनका बस चले तो वे कबीर की तरह कहें : **'करता केरे बहुत गुण, औगुण कोई नाँहि/जो दिल खोजौं आपणौ सब औगुण मुंझ मांहि।'** हनुमान को तो वे 'सकल गुण निधानं' कह ही रहे हैं। स्वयं के दोष लेकिन उन्हें 'आदि' का आश्रय ले लेने पर विवश कर देते हैं।

तुलसी आदि से पहले जिस एक दोष को दृष्टान्त के लिए चुनते हैं, वह है काम। तुलसी शंकराचार्य की तरह यह नहीं कहते कि **'वयसि गते कः कामविकारः'**- कि अवस्था बीत जाने पर कैसा कामविकार? वे काम को मूल दोष की तरह-सा बरतते हैं और बाकी सब दोषों को उसी के आदि में गिनते हैं।

मनुष्य की हृदयभूमि में मोहरूपी बीज से उत्पन्न हुआ एक विचित्र वृक्ष है जिसका नाम है काम। क्रोध और अभियान उसके महान् स्कन्ध हैं। कुछ करने की इच्छा उसमें जल सींचने का पात्र है।

वेदव्यास ने भी महाभारत के शांतिपर्व (२५४/१-३) में काम को यही हैसियत बख्शी है :

हृदि कामद्रुमश्चित्रो मोहसंचयसम्भवः।
क्रोधमानमहास्कन्धो विधित्सापरिषेचनः।।
तस्य चाज्ञानमाधारः प्रमादः परिषेचनम्।
सोऽभ्यसूयापलाशो हिपुरा दुष्कृतसारवान्।।
सम्मोहचिन्ताविटपः दुष्कृतसारवान्।।
सम्मोहचिन्ताविटपः शोकशाखो भयांकुरः।
मोहनीभिः पिपासाभिर्लताभिरनुवेष्टितः।।

मनुष्य की हृदयभूमि में मोहरूपी बीज से उत्पन्न हुआ एक विचित्र वृक्ष है जिसका नाम है काम। क्रोध और अभियान उसके महान् स्कन्ध हैं। कुछ करने की इच्छा उसमें जल सींचने का पात्र है। अज्ञान उसकी जड़ है, प्रमाद ही उसे सींचने वाला जल है दूसरे के दोष देखना उस वृक्ष का पत्ता है तथा पूर्वजन्म में किए गए पाप उसके सार भाग हैं। शोक उसकी शाखा, मोह और चिन्ता डालियाँ एवं भय उसका अंकुर है। मोह में डालने वाली तृष्णा रूपी लताएँ उसमें लिपटी हुई हैं।

नारदपुराण के पूर्व भाग, प्रथम पाद (३४/९६) में उसे ही मूल कहा गया है :

काममूलमिदं जन्म कामः पापस्य कारणम्।
यशः क्षयकरः कामस्तस्मात् तं परिवर्जयेत्।।

काम इस जन्म का मूल कारण है। काम पाप कराने में हेतु है और यश का नाश है। अतः काम को त्याग देना चाहिए।

लेकिन यहां काम को दोष के रूप में परिगणित करने में तुलसी ने उसे ऐन्द्रिक भोगाकर्षण के सीमित अर्थ में लिया है, अन्यथा तुलसी भी भारत की उस विचार-परंपरा से परिचित हैं जहां काम को जीवन के चार पुरुषार्थों में से एक माना गया है। जयशंकर प्रसाद ने तो कामायनी ही लिखी थी। हिन्दी में जैनेन्द्र, इलाचंद्र जोशी, अज्ञेय आदि के प्रसंगों में फ्रायड के मनोविश्लेषण के अंतर्गत 'काम' की भूमिका पर काफी चर्चा रही, लेकिन उनसे बहुत पहले जयशंकर प्रसाद ने काम पर कामायनी के रूप में पूरी ट्रीटाइज ही लिख दी थी जो भारतीय विचार-परंपरा के अनुकूल थी। वहां प्रसाद कहते हैं- **'काम मंगल से मंडित श्रेय/सर्ग, इच्छा का है परिणाम/तिरस्कृत कर उसको तुम भूल/बनाते हो असफल भवधाम।'** हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आलोक पर्व (पृ. १८) में उसी भारतीय दर्शन-भूमि पर अधिरूढ़ होकर ही कहा था कि 'परब्रह्म की उस मानसिक इच्छा का, जो संसार की सृष्टि में प्रवृत्त होती है, मूर्त रूप ही काम है।' अन्ततः ग्रीक देवता एरास और रोमन देवता क्यूपिड की तरह, बल्कि उनसे पहले, काम को हमारे शास्त्रों ने एक देवता का दर्जा दिया, राक्षस का नहीं। ग्रीकोरोमन शास्त्रों में भी जब क्यूपिड (कामदेव) और साइके (चिति) के प्रेम संबंध जब बताए गए हैं, मसलन एप्पालियस द्वारा दूसरी शताब्दी में लिखे आख्यान में, तो वहां भी साइके अपने पति क्यूपिड को भारतीय अनंग की तरह ही देख नहीं सकती है, उसकी अर्धांगिनी होने के बाद भी उसका पति उसके लिए अनदेखा ही रहता है, वह उसके पास रात गहराने के बाद आता है और पूर्व में इऑस (उषा) की लालिमा फैलने से पहले चला जाता है। कामदेव की ही तरह क्यूपिड/एरॉस के भी पास उनके धनुष-बाण हैं। बाणभट्ट जैसे (कादंबरी के पूर्व भाग में) कामदेव के बाणों की चर्चा करते हैं- **'अप्रतीकारदारुणां/दुर्विषहवेगः कष्ट; कुसुमायुधः/आदौ विनयादिकं कुसुमेषुशराः खंडयंति पश्चान्मर्माणि/न च तद्भूतमेतावति त्रिभुनेडस्य शरशरव्यतां यन्न यातं याति यास्यति वा'** (अर्थात् कष्टदायक कामदेव का आयुध असह्य वेग वाला तथा प्रतिकाररहित होने से दारुण होता है। कामदेव के बाण पहले तो विनय आदि को तोड़ते हैं, फिर मर्मस्थानों को/इस विशाल त्रिभुवन में ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो कामदेव के बाण का लक्ष्य हुआ नहीं है, होता नहीं है या होगा ही नहीं। ऐसे ही नटखट एरॉस के बाण हैं। क्यूपिड और साइके के सुखमय दाम्पत्य जीवन से एक 'ज्वॉय' नामक बेटी होती है। काम और चिति के समन्वय का परिणाम खुशी ही होगी। 'सर्ग इच्छा का है परिणाम' की तरह ही एरॉस ने भी अपने सुनहले जीवन देने वाले बाणों से 'अर्थ' या 'गी' के ठंडे वक्ष को भेद डाला और धरती के पथरीले सीने को हरियाली ने ढंक लिया, चिड़ियां चहचहाने लगीं, नदियों के पारदर्शी स्वच्छ जल में मछलियां खिलवाड़ करने लगीं। एक दूसरी कहानी में प्रमीथ्यु ने देवताओं की प्रतिकृति के रूप में मानव की संरचना करने मिट्टी के पुतले तैयार किए तो एरॉस ने ही उनमें जीवन फूंका था। मनुस्मृति में कहा गया कि **'अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित। यद्यद्धि कुकते किंचित् तत्रत् कामस्य चेष्टितम्'** अर्थात् इस संसार में काम के बिना किसी मनुष्य का कोई कार्य कभी भी दिखाई नहीं देता। मनुष्य जो कुछ करता है वह सब काम के कारण।'

शिव की तरह देव सम्राट ज्यूस का भी हृदय एरॉस ने अपने पुष्पबाण से बेधा था और ज्यूस यूरोपे पर आसक्त हो गया था (अपोलो-डॉरस, हाइजीनस, ओविड तथा इनसे भी बढ़कर तीसरी शती के एलैग्जेड्राइन कवि मोस्कस ने इस प्रेम कथा का वर्णन किया है) और उसके लिए 'बैल' का रूप धारण कर लिया। घुंघराले सुनहले बालों वाले नटखट देवता ईरोस ने अपोलो जैसे प्रमुख देवता का हृदय भी परनासस की

व्याख्या

> *मूर्ख का मन कामसुख में रमता है। थुसाइडीस् ने 'एरॉज' को साम्राज्यवादी इच्छाओं के मूल में ठहराया था, इसलिए प्राचीन ग्रीक नगरों में युद्ध पर जाने से पहले भी कामदेव की पूजा होती थी। वहां सत्ता की ऐषणा भी 'काम' ही थी।*

एक चट्टान पर खड़े होकर स्वर्ण-बाण से बेधकर उसे डाफ्ने के प्रति आसक्त कर दिया था। एरॉस के स्वर्ण बाण जिसे बेध जाते हैं, उसे न दिन में चैन मिलता है न रात में नींद। अपोलो ज्यूस का पुत्र है। लेकिन प्रमुख देवताओं को लक्ष्य बनाने की धृष्टता के बावजूद भी एरॉस शिव के तीसरे नेत्र के खुलने के साथ कामदेव जैसा भस्म नहीं होता क्योंकि ज्यूस और अपोलो भोगवादी बताए गए हैं जबकि शिव वैराग्य और निर्लिप्तता की प्रतिमूर्ति। हमारे यहां तो कामदेव पार्वती की शिव को वरण करने की इच्छा में सहायक होते हैं, लेकिन वहां डाफ्ने अपोलो से बचने के लिए भागती चली जाती है, अपोलो उसका पीछा करता है, भागते भागते शक्तिहीन हुई डाफ्ने के पास जब अपोलो आ पहुंचता है तो उससे बचने के लिए डॉफ्ने चीख पड़ती है, अपमान से रक्षा करने की प्रार्थना 'पिता' से करती है और प्रार्थना के फलस्वरूप लॉरेल नामक एक वृक्ष में बदल जाती है। हमारे यहां तो स्वयं काम का रूप बदल जाता है। वह अदेह, अनंगी, अशरीर, भस्मगात्र होकर रह जाता है। कामदेव को हमारे शास्त्रों में संकल्प संभव कहा गया (भास ने अविमारक में कहा- **संकल्पमानो हि विजृम्भते मदनः**) कि संकल्प करने से ही काम-भावना की वृद्धि होती है। उसे मनसिज या मनोज कहने का भी यही अर्थ है कि वह है मन का खेल। प्लेटो ने अपने सिम्पोज़ियम में काम को एक ऐसे तत्व की संज्ञा दी है जो आत्मा को सौंदर्य-ज्ञान की पुनर्स्मृति कराता है और उसे आध्यात्मिक सत्य की समझ में योग देता है। काम हमेशा अंधा ही करता हो, यह जरूरी नहीं। लेकिन जब काम दोष हो तब यह अंधा ही करता है। कालिदास ने कुमारसंभव (५/८२) में कहा : **'न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते'** कि काम-वृत्ति किसी के कहने पर ध्यान नहीं देती। मेघदूत में भी कालिदास कहते हैं कि **'कामार्त्ता ही प्रकृतिकृपणश्चेत-नाचेतनेषु** कि काम से पीड़ित लोग जड़ चेतन पदार्थों के सम्बन्ध में स्वभावतः विवेकशून्य हो जाया करते हैं।' जातक (चुल्लसुक जातक) में कहा गया **'ते अन्धकरणे कामे'** कि कामभोग अंधा बना देने वाले हैं। लेकिन जो काम दोष नहीं है, वह जागृत करता है। सुकरात ग्रीक संज्ञाए एरॉज़ (प्यार) और ग्रीक क्रिया एरोटन (प्रश्न पूछना) में व्युत्पत्तिमूलक समानता की ओर हमारा ध्यान खींचते हैं। उनका कहना था कि काम में प्रश्नाकुलता खत्म नहीं हो जाती। शायद उनका कहना उस तरह के 'काम' के लिए होगा जो जीवन के अभिप्रेरकों में है लेकिन वह काम जो दोष है उसके ५ बाण- उन्माद, निष्चेष्टीकरण, मोहन, शोषण और संतपन हैं। वह काम जो दोष है, उसके लिए हत्थिपाल जातक की वही पंक्तियां सच है : **'पंको च कामा पलियो च कामा/ मनोहरा दुत्तरा मच्चुधेय्या/एतस्मिं पंके पलिपे व्यसञ्ञा/ हीनत्तरूपा न तरन्ति पारं'।** यह वह काम है जिसके बारे में अश्वघोष ने सौंदरनंद (८/२६७) में कहा है कि **'रमते कामसुखेन बालिशः'**- मूर्ख का मन कामसुख में रमता है। थुसाइडीस् ने 'एरॉज' को साम्राज्यवादी इच्छाओं के मूल में ठहराया था, इसलिए प्राचीन ग्रीक नगरों में युद्ध पर जाने से पहले भी कामदेव की पूजा होती थी। वहां सत्ता की ऐषणा भी 'काम' ही थी। एक सतत असंतृप्ति जिसमें आदमी न केवल ज्यादा से ज्यादा पाना चाहता है बल्कि ज्यादा से ज्यादा होना भी चाहता है। यही काम जो प्लेटो का एरॉज है, रुसो की 'खुद को फैलाने की इच्छा' (द डिज़ायर टु एक्स्टेन्ड अवर बीइंग) है, नीत्शे की 'विल टु पॉवर' है, विकृत होकर तरह-तरह के कहर ढाता है। यानी यह तो सच है कि काम न केवल मानवीय उत्कृष्टता का एक अंग है बल्कि वह आत्मा का भी एक अलंकार है, लेकिन एक दूषित काम न केवल निकृष्टता के रसातल में ले जाता है बल्कि हिंसक अमानुषिकताओं का विद्रूप भी खड़ा कर देता है। यह वह काम है जिसे रोमन कैथोलिकों ने 'लस्ट' कहा और उसे 'प्रमुख पाप' (कैपिटल सिन) की संज्ञा दी।

आजकल तो लोग दोषों को दूर करने के लिए प्रबन्धन की भाषा में SOL तकनीक का इस्तेमाल करते हैं- सब्जेक्ट, आब्जेक्ट एवं लोकेशन की। समेइल, जिन्होंने इस तकनीक पर आधारित एक पुस्तक 'ट्रीटाइज़ आफ रिवोल्यूशनरी साइकोलाजी' लिखी है, ने कहा : "Every time that a defect is eliminated, one part of consciousness is released and secretly your Internal Master will give you wisdom about the divine.' लेकिन तुलसी की निर्भरा भक्ति सम्पूर्ण है। वहां यदि किसी को कुछ करना है तो वह ईश्वर को ही करना है, उनके 'राम' को। यदि कामादिदोष रहित भी मानस को करना है तो वह राम का ही काम है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा : **'प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः'** कि सब कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किए हुए होते हैं। इसलिए तुलसी यह नहीं कह रहे कि वे स्वयं अपने मानस से कामादि दोषों को दूर करेंगे। वे उसके लिए ईश्वर से प्रार्थना कर रहे हैं कि यह शुभ काम वही करे। यों तो भगवान श्रीकृष्ण ने मन को वश में करने के लिए कहा कि **'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते,'** लेकिन तुलसी अभ्यास या वैराग्य का दावा भी नहीं करते। वे करने का काम राम पर छोड़ते हैं।

मानस के शुद्धीकरण को तुलसी ने हमेशा ही बहुत महत्वपूर्ण माना। विनय पत्रिका (पद १०) में तुलसी ने कहा : **'ऐसी मूढ़ता या मन की/परिहरि राम भगति सुर सरिता आस करत ओसकन की।'** मन के हारे हार है, मन के जीते जीत, इसलिए मानस की भूमिका को तुलसी नज़र अंदाज नहीं कर सकते। मन में कितने जन्मों का कचरा जमता रहता है, कौन जाने। इस कारण तुलसी मन की क्लींज़िंग को, मन की

सफाई को बहुत महत्व देते हैं। विनय पत्रिका (पद १२४) में उन्होंने कहा था : **'जो निज मन परिहरै बिकारा/तो कत द्वैत-जनित संसृति-दुख संसय सोक अपारा।'** मन में बहुत से विकार भरे रहते हैं। मन पर बहुत से दोषों का दबाव रहता है। बहुत सा अपराध-बोध, बहुत सी अशुद्धताओं से वही मन बोझिल हो जाता है जो यों तो वायु के समान प्रबल वेग वाला है। मन का मार्च धीमा पड़ता जाता है। मन के दोष मन की दासता हैं। दोषों से मुक्ति एक तरह की मनोवैज्ञानिक स्वतंत्रता है। जैसे शान्त जल में ही चीजें अपने आप को ठीक से प्रतिबिम्बित कर पाती हैं, उसी तरह से शान्त मन से ही दुनिया को सही सही देखा जा सकता है। मन शान्त तभी होगा जब वह 'कामादिदोष रहित' हो। जब दोषों का यह कचरा मन के सरोवर की सतह पर नहीं हो, तभी जगत् का सही प्रत्यक्षीकरण संभव है। दोष दरार पैदा करते हैं। दोषों के कारण मन टूक टूक हो जाता है। मन के खंडहर खड़े हुए जाते हैं। कभी बचपन में जो एक निर्दोष, निश्छल, साबुत चित्त था वह खंडहर होता जाता है, उसके शिराजे बिखरते जाते हैं। मानस की शुद्धता, मानस की पूर्णता है। मानस की अमलता से मानस की अखंडता सुनिश्चित होती है। तब मन के मानसरोवर में यदि लहरें उठती भी हैं तो भी उनके संदेश को सही सही पढ़ा जा सकता है। झरना में जयशंकर प्रसाद ने यही कहा था : **'शुद्ध मानस की लहरें लोल/पंक्तियां पावन लिखीं विचित्र/छोड़ ममता पढ़ ले इसको/यही है शुभ आदेश महान।'** त्रासदी यह घटती है कि मन के दर्पण पर विकारों की काई लग जाती है। तुलसी की प्रार्थना उस काई को हटाने की है।

तुलसी 'मानस' पर बात करते हैं, वे उनमें से नहीं हैं जो 'मानस' को भी किसी की 'भूति' (physicality) ही मानते हैं, कि भावना क्या है? ब्रेन-अंचल में कुछ न्यूरान्स की फायरिंग! तुलसी ऐसा स्वीकारना अपने लिए संभव नहीं मानते। आजकल के रिडक्टिव भौतिकवादी मानते हैं कि सभी मानसिक अवस्थाओं और गुणों की व्याख्या भौतिक शास्त्रीय प्रक्रियाओं और अवस्थाओं के वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा की जा सकती है। मन भी एक तरह का शुद्ध भौतिक परिनिर्माण है। यदि मन की कोई चीज अव्याख्येय रह गई है तो भी इसलिए कि स्नायुतंत्रविज्ञान अभी पूरी तरह विकसित नहीं हुआ है। लेकिन तुलसी 'माइंड' और 'मैटर' के द्वैत में से सिर्फ 'माइंड' का उल्लेख करते हैं क्योंकि वे उस पाश्चात्य विचार के नहीं हैं जिसके अनुसार एक स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है बल्कि वे उस भारतीय लोकमान्यता के अनुरूप चलते हैं जिसके अनुसार मन चंगा तो कठौती में गंगा। पश्चिमी विचार तो अष्टावक्र छोड़िए, स्टीफन हाकिंग तक के साथ न्याय नहीं कर सकता।

> *मन शान्त तभी होगा जब वह 'कामादिदोष रहित' हो। जब दोषों का यह कचरा मन के सरोवर की सतह पर नहीं हो, तभी जगत् का सही प्रत्यक्षीकरण संभव है।*

फिर, तुलसी यहां संभवतः अपनी कृति 'मानस' को भी दूषणों से रहित करवाने के लिए राम का आशीर्वाद मांगते हैं, उनकी कृपा के लिए भी प्रार्थना करते हैं। वे जानते हैं कि दोषग्रस्तता मानस के पारायण में भी उतनी ही बाधक होगी जितनी उसके सृजन में। बालकांड में वे कह चुके हैं : **'अति खल जे बिषई बग कागा/एहिं सर निकट न जाहिं अभागा/संबुक भेक सेवार समाना/इहाँ न विषय कथा रस नाना/तेहि कारन आवत हियँ हारे/कामी काक बलाक बिचारे/आवत एहिं सर अति कठिनाई/सम कृपा बिनु आइ न जाई/कठिन कुसंग कुपंथ कराला/तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला/गृह कारज नाना जंजाला/ते अति दुर्गम सैल बिसाला/बन बहु विषम मोह मद माना/नदीं कुतर्क भयंकर नाना।'** जो अति दुष्ट और विषयी हैं वे अभागे बगुले और कौवे हैं, जो इस सरोवर के समीप नहीं जाते क्योंकि यहां इस मानस-सरोवर में घोंघे, मेढक और सेवार के समान विषय-रस की नाना कथाएँ नहीं हैं। इसी कारण बेचारे कौवे और बगुले रूपी विषयी लोग यहां आते हुए हृदय में हार मान जाते हैं। क्योंकि इस सरोवर तक आने में कठिनाइयाँ बहुत हैं। श्री रामजी की कृपा के बिना यहाँ आया नहीं जाता। घोर कुसंग ही भयानक बुरा रास्ता है, उन कुसंगियों के वचन ही बाघ, सिंह और सांप हैं। घर के काम काज और गृहस्थी के भांति भांति के जंजाल की अत्यन्त दुर्गम बड़े-बड़े पहाड़ हैं। मोह, मद और पान ही बहुत से बीहड़ वन हैं और नाना प्रकार के कुतर्क ही भयानक नदियाँ हैं, इतना सब कह लेने के बाद तुलसीदास पंचलाइन में पंच मारते हैं - **'जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ/तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ।'** जिनके पास श्रद्धा रूपी राह-खर्च नहीं है और संतों का साथ नहीं है और जिनको श्री रघुनाथजी प्रिय नहीं हैं, उनके लिए यह मानस अत्यन्त ही अगम है।

मानस और मानसरोवर दोनों का कुछ ऐसा संयोग रहा कि 'मानस' के साथ सरोवर एकात्म हो गया। 'अस मानस मानस चख चाही।' जब तुलसी मानस के पारायण के लिए इतनी कठिन शर्तें रखते हैं तो मानस के सृजन के लिए रचनाकार के सामने उन्होंने कितनी कठिन शर्तें रखी होंगी। 'कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च' - पहले अपने मानस को दोष रहित बनाओ, फिर अपनी कृति को दूषण रहित होने का आशीष मांगो। तुलसी चार्ल्स बौदलेयर की तरह पाप की अतल खाइयों में स्वयं गिरकर 'पाप के पुष्प' (फ्लावर्स आफ ईविल) की रचना नहीं करते। वे शुद्धमना होकर एक तपः पूत हृदय के साथ लेखनकर्म में प्रवृत्त होते हैं।■

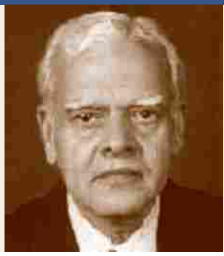

भूपेन्द्र कुमार दवे

जन्म : २१ जुलाई १९४१. शिक्षा : बी.ई. आनर्स, एफ.आई.ई., कहानी और कविताओं का आकाशवाणी से प्रसारण. प्रकाशित कृतियाँ : ३ खंड काव्य, १ उपन्यास, ५ काव्य संग्रह, २ ग़ज़ल संग्रह, ७ कहानी संग्रह एवं २ लघुकथा संग्रह. मध्यप्रदेश विद्युत मंडल द्वारा कथा सम्मान. त्रिवेणी परिषद द्वारा उषा देवी मित्रा अलंकरण प्राप्त. संप्रति : भूतपूर्व कार्यपालन निदेशक, मध्यप्रदेश विद्युत मंडल.

सम्पर्क : b_k_dave@rediffmail.com

मंथन

अन्तरात्मा की भव्यता

THE GRANDEUR OF INNER SELF

PART 6

Mind speaks -

What is the role of mind in making some wise and others unwise? Why are some minds sharp and others dull? Is it all due to reluctance on your part to provide identical guidance to us?

मन ने कहा -

किसी को ज्ञानी और अन्य को अज्ञानी बनाने में मन की क्या भूमिका है? कुछ मन तेज और अन्य निस्तेज क्यों होते हैं? क्या यह तुम्हारे द्वारा हम सबको समान मार्गदर्शन प्रदान करने की अनिच्छा के कारण है?

Is the mind that is dull really actionless and is the mind that is too sharp often goes erratic? What is the balanced mind and how should it react with the inner self?

क्या वह मन जो निस्तेज होता है वास्तव में कर्महीन होता है और जो मन अति तेज होता है वह प्रायः अस्थिर होता है? संतुलित मन क्या है और वह अंतरात्मा से कैसी प्रतिक्रिया करता है?

The inner self answers

I am forever the same and change not even when placed in different bodies. So how can you find me changing my character, nature and attitude?

अन्तरात्मा ने उत्तर दिया

मैं सर्वत्र एकरूप हूँ और विभिन्न शरीर में रहकर भी नहीं बदलता। तो फिर तुम कैसे मेरे चरित्र, स्वभाव और व्यवहार को बदला हुआ पा सकते हो।

One who is pious shall remain pious forever and like a burning candle will illuminate the surroundings wherever it is carried.

जो पवित्र है वह सदा पवित्र ही बना रहेगा और प्रज्वलित दीपक की तरह कहीं भी रखे जाने पर चहुँओर प्रकाश ही फैलायेगा।

I am the self and that self is in all. Thus considering all as the self, I provide identical fuctional level to all the minds.

मैं आत्मा हूँ और वह आत्मा सब में है। अतः सबको आत्मा का स्वरूप मानकर मैं सभी के मन को कार्य संपादन के लिये मात्र एक ही स्तर प्रदान करता हूँ।

And the self-residing in each man is a part of that one formless --- the consciousness. The inner self though appearing different and named differently in various languages has identical splendour of that singular eternal light.

और प्रत्येक मानव में बसी आत्मा उस एक निराकार ब्रह्म का अंश है, अंतरात्मा यद्यपि विभिन्न दिखती हैं व अलग-अलग भाषा में विभिन्न नामों से जानी जाती है, उस अद्वितीय प्रकाश के वैभव के रूप में वह एक ही है।

Because the eternal light even appearing as emerging from its mysterious multiple sources shall give the same light for no light can be polluted.

क्योंकि विविध रहस्यमय स्रोतों से निकलता अनंत प्रकाश एक-सा उजाला देता है क्योंकि कोई भी प्रकाश दूषित नहीं किया जा सकता।

And the wind that comes from all directions through valleys deep and mountains high, from forest dense and deep blue seas remains the same.

> ये मन है जो फूलकर वह स्तर चुनता है जहाँ उसे तैरना है। पहला स्तर वह है जहाँ जरूरतें और इच्छायें भी अति हैं। दूसरा वह है जहाँ जरूरतें और इच्छायें न्यूनतम हैं।

और वायु जो गहरी खाईयों व ऊँचे पर्वतों, घने जंगलों व गहरे नीले सागर को लाँघती सभी ओर से आती है एक सी होती है।

And all clouds dark, dense and drowse and scattered in packs all over the sky are the same.

और सारे बादल काले, घनघोर व ऊँघते या संपूर्ण आकाश में बिखरे सफेद झुण्ड सब एक से होते हैं।

And fire emanating from various sources even with varied hues of its furious fangs is the same.

और विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न अग्नि अपनी प्रचंड लपटों से विभिन्न रंग लेकर भी एक-सी होती है।

So know that inner self of all is identical and all human minds are identically having the same mentor --- the same self.

अतः जानो कि सबकी अंतरात्मा एक जैसी है और सब मानव मन एक समान हैं तथा सबको एक-सा पथप्रदर्शक, एक आत्मा मिली है।

And when all are identical, then none is superior or inferior to other. Then why the mind gets lost in the thoughts of complexes, envy, hatred, malice and enmity?

और जब सब एक समान हैं तो कोई किसी से भी बड़ा या छोटा नहीं है। तो फिर ऊँच-नीच की भावना, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या व वैमनस्य का विचार मन में आता ही क्यों है?

But the real existing in the mist of unreal cannot hold the minds that get inflated by ego, desires and other evils, like a balloon the mind loves to float in lifeless atmosphere of unreality.

किन्तु असत की धुंध में बसा सत उन मन को बँधे नहीं रख सकता जो अहं, इच्छा व अन्य बुराईयों से गुब्बारों की तरह फूले हुए हैं और असत के मृतप्राय वातावरण में तैरना पसंद करते हैं।

It is the mind that gets so inflated chooses the level where it has to float. First level is where wants and needs are enormous and so are desires. The second one is where wants and needs are meger and so are the desires.

ये मन है जो फूलकर वह स्तर चुनता है जहाँ उसे तैरना है। पहला स्तर वह है जहाँ जरूरतें और इच्छायें भी अति हैं। दूसरा वह है जहाँ जरूरतें और इच्छायें न्यूनतम हैं।

The third level is that where the mind is in its original uninflated state and where wants and needs are nothing and desires also are none.

तीसरा स्तर वह है जहाँ मन फूलने के पहले की अवस्था में था और वह है जहाँ जरूरतें व कमियाँ कुछ नहीं हैं और इच्छायें भी शून्य हैं।

In the first level the mind does as it is forced to do by ego, desires and the other evils. In the second level it does whatever the body and its senses allow it to do. In the third level the mind being totally free from unrealities does whatever the purity of inner soul pleases.

प्रथम स्तर में मन वह करता है जो अहं, इच्छा व अन्य बुराईयाँ उसे करने पर बाध्य करती हैं। द्वितीय स्तर में वह वही करता है जो शरीर व उसकी इन्द्रियाँ उसे करने देती हैं। तृतीय स्तर में असत से पूर्णतया स्वतंत्र होने के कारण वह वही करता है जो उसकी पवित्र अंतरात्मा चाहती है।■

क्रमशः

पंचतंत्र कई दृष्टियों से संसार की सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियों में से एक है। इसमें संकलित कहानियों का मूल उत्स लोक-जीवन है। भारतीय कृतियों में पंचतंत्र ऐसी अकेली रचना है, जिसे पूरी तरह ज्ञानकोश कहा जा सकता है। कथा प्रस्तुति की जो शैली इसमें प्रयुक्त है, उसकी एक लंबी परम्परा है। 'वेद', 'ब्राह्मण' आदि ग्रंथों में भी इस फैंटेसी का प्रयोग हुआ है।

भारुंड पक्षी का अंत

> कहते हैं कि न तो कोई स्वादिष्ट वस्तु अकेले खानी चाहिए, न ही दूसरे लोगों के सो जाने पर अकेले जगना चाहिए, न अकेले कहीं जाना चाहिए और न ही किसी गंभीर विषय पर अकेले सोचना चाहिए।

सुवर्णसिद्धि बोला, किसी सरोवर में भारुंड नाम का एक पक्षी रहता था। उसके पेट तो एक ही था पर गर्दन और मुंह दो थे। वह इधर-उधर घूम रहा था कि उसे समुद्र के किनारे एक बहुत मधुर फल मिला। उसे खाने के बाद उसने कहा, समुद्र की लहरों पर बहकर आए हुए कई तरह के फल इससे पहले भी खाने को मिले थे परंतु इसका स्वाद तो ऐसा है जैसा किसी का था ही नहीं। कहीं यह देवलोक से आया हुआ फल तो नहीं? कहीं साक्षात मेरा भाग्य ही तो इस फल को मेरे लिये यहां लाकर नहीं छोड़ गया?

उसके एक मुंह से ये शब्द निकल ही रहे थे कि दूसरे मुंह ने कहा, "अरे भई, ऐसी बात है तो थोड़ा सा मुझे भी चखने को तो दो। तुम तो सारा मजा अकेले ही ले रहे हो।"

जिस मुंह ने फल का स्वाद लिया था उसने दूसरे की खिल्ली उड़ाते हुये कहा, "अरे यार, हमारा पेट तो एक ही है। एक ने खा लिया तो सबकी तृप्ति हो गई। अलग-अलग खाने की क्या पड़ी है। अच्छा हो कि जो बच गया है उसे बचाकर अपने जोड़े के लिए रख लें। उसे भी इसका स्वाद मिल जायेगा।"

उसने यह कहकर बचा हुआ फल अपने जोड़े को दे दिया। उसने फल खाने के बाद पति को हृदय से लगा लिया और कोई मादा अपने नर को रिझाने के लिये जिस तरह चूमना, चाटना और कनखियों से देखना शुरू करती है वह सब उसने भी करना शुरू कर दिया। बेचारा पहला मुंह उसके बाद से उदास सा रहने लगा।

किसी दूसरे दिन दूसरे मुंह को एक जहरीला फल मिल गया। उसने उसे चखा तो उसका जायका खराब हो गया। उसने कहा, "अरे नालायक, तूने मेरी बहुत बेइज्जती की थी। आज मैं इसका हिसाब इस फल को खाकर लूंगा।"

पहले ने यह बात सुनी तो घबरा उठा। बोला, "क्या कहते हो! तुम ने ऐसा किया तो न तुम बचोगे न मैं बचूंगा।"

दूसरे को यह बात तो मालूम ही थी। इसीलिए तो उसे धमका रहा था। उसने उसके रोकने बरजने पर कोई ध्यान न दिया और पूरा फल खा गया। फल का खाना था कि वह पक्षी मर गया।

घनचक्कर ने कहा, "तुम्हारी बात ठीक है। अब तुम जा सकते हो। एक बात का ध्यान रखना कि सोने के लोभ में अकेले राह मत चलना। कहते हैं कि न तो कोई स्वादिष्ट वस्तु अकेले खानी चाहिए, न ही दूसरे लोगों के सो जाने पर अकेले जगना चाहिए, न अकेले कहीं जाना चाहिए और न ही किसी गंभीर विषय पर अकेले सोचना चाहिए।"

रास्ते में कोई भीरू से भीरू साथी ही क्यों न हो, उससे भी अपनी भलाई ही होती है। साथ में चलने वाले केंकड़े ने ही ब्राह्मण की जान बचाई थी।

सुवर्णसिद्धि ने कहा, पुरी कहानी तो सुनाओ।■

महर्षि वेद व्यास

वैदिककालीन ऋषि वेद व्यास की रचना महाभारत की गणना भारतीय साहित्य-भंडार के सर्वश्रेष्ठ महाग्रंथों में की जाती है। इसमें पांडवों की कथा के साथ अनेक सुन्दर उपकथाएँ हैं तथा बीच-बीच में सूक्तियाँ एवं उपदेशों के उज्जवल रत्न भी जुड़े हुए हैं। महाभारत एक विशाल महासागर है जिसमें अनमोल मोती और रत्न भरे पड़े हैं। रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचार के मूल स्रोत माने जा सकते हैं।

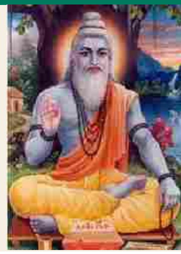

जयद्रथ-वध

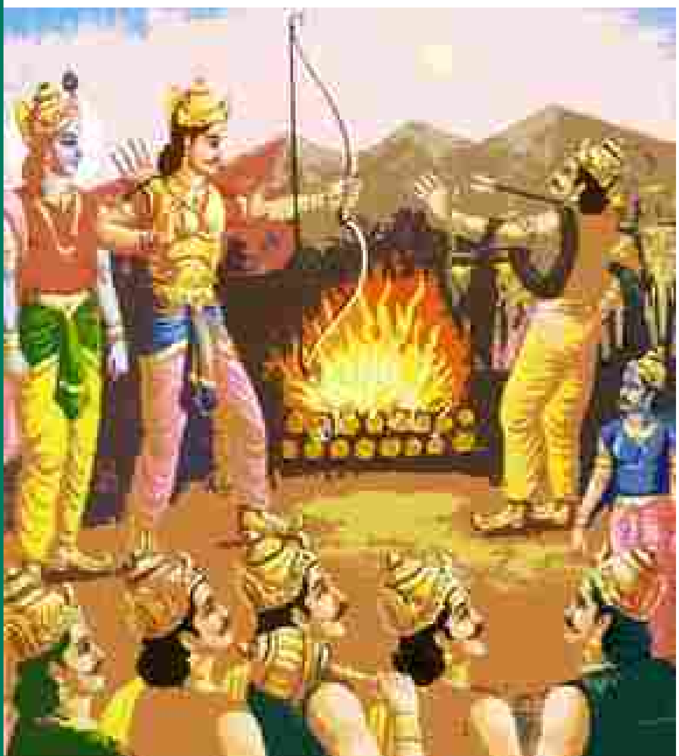

कर्ण आज हमारा भाग्य-निर्णय होने वाला है। दुर्योधन ने कहा, और आज वह अवसर हाथ आया है, जिससे मेरे भाग्य के चमकने की संभावना है। आज यदि अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी न हो पाई तो निश्चय ही वह लज्जा के मारे आत्मघात कर लेगा। अर्जुन के मर जाने पर पांडवों का नाश भी निश्चित है। फिर तो यह सारा राज्य हमारे ही अधीन हो जायेगा। उसके बाद कोई हमारे सामने सिर नहीं उठा सकेगा। मूर्खता और भ्रम के वश होकर अर्जुन ने यह प्रतिज्ञा करके अपने ही सर्वनाश का आयोजन कर लिया है। यह मेरे भाग्योदय की ही सूचना है! ऐसे अवसर को हाथ से न जाने देना चाहिए। हमें कोई-न-कोई प्रयत्न करके अर्जुन की प्रतिज्ञा झूठी कर देनी चाहिए। आज तुम्हें अपनी रणकुशलता का पूरा-पूरा परिचय देना होगा। आज तुम्हारी परीक्षा का दिन है। अब सूरज अस्त हुआ ही चाहता है। थोड़ी ही देर रह गई है। सूर्यास्त तक अर्जुन जयद्रथ के पास पहुंच नहीं सकेगा। कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, तुम और मैं सभी साथ-साथ और हर तरह से सतर्क रहकर जयद्रथ की रक्षा करते रहें तो अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी नहीं हो पायेगी।

यह सुन कर्ण बोला- "राजन्! भीमसेन के साथ युद्ध करते-करते मैं बहुत थक गया हूं। मेरा सारा शरीर घावों से भर गया है। शरीर की स्फूर्ति कम हो गई है। फिर भी तुम्हारे उद्देश्य की पूर्ति में यथासंभव पूरा हाथ बटाऊंगा। मैं तुम्हारी ही खातिर जी रहा हूं।"

युद्ध-स्थल में जिस समय कर्ण और दुर्योधन में ये बातें हो रही थीं, उसी समय दूसरी तरफ अर्जुन कौरव-सेना में प्रलय-सा मचा रहा था। अर्जुन की इच्छा यह थी कि किसी तरह कौरव-सेना को तोड़-फोड़कर अंदर प्रवेश करके सूर्यास्त होने से पहले जयद्रथ के निकट पहुंचकर उसका काम तमाम किया जाये।

इतने में श्रीकृष्ण ने एकाएक अपना शंख-पांचजन्य जोरों से बजाया। सुनते ही उनका सारथी दारुक एक रथ लेकर आ पहुंचा। सात्यकि लपककर उस पर सवार हुआ। वह कर्ण पर टूट पड़ा और दोनों में बड़ी कुशलता और तत्परता से युद्ध होने लगा।

> *आज यदि अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी न हो पाई तो निश्चय ही वह लज्जा के मारे आत्मघात कर लेगा। अर्जुन के मर जाने पर पांडवों का नाश भी निश्चित है। फिर तो यह सारा राज्य हमारे ही अधीन हो जायेगा। उसके बाद कोई हमारे सामने सिर नहीं उठा सकेगा।*

> चौदहवें दिन का युद्ध केवल सूर्यास्त तक ही नहीं हुआ बल्कि रात को भी होता रहा। ज्यों-ज्यों युद्ध का जोश बढ़ता गया, त्यों-त्यों विधि-निषेध की सीमाएं एक-एक करके टूटती गईं। यहां तक कि अंत में अधर्म का बोलबाला हो गया।

दारुक ने रथ चलाने में बड़ा कौशल दिखाया और सात्यकि ने धनुष चलाने में। दोनों का रण-कौशल देखने को देवता आकाश में इकट्ठे हो गये। कर्ण के चारों घोड़े और सारथी मारे गये। उसके रथ की ध्वजा कटकर गिर पड़ी। पर-भर में रथ भी चूर हो गया। इस पर कर्ण दुर्योधन के रथ पर चढ़कर युद्ध करने लगा।

इस युद्ध का वर्णन धृतराष्ट्र को सुनाते हुए संजय ने कहा- "इस संसार में श्रीकृष्ण, अर्जुन और सात्यकि के समान धनुर्धारी और कोई नहीं है।"

उधर कौरव-सेना को तितर-बितर करता हुआ अर्जुन जयद्रथ के पास आखिर पहुंच ही गया। उस समय के अर्जुन के रौद्र रूप का वर्णन नहीं हो सकता था। वह अपने पुत्र अभिमन्यु की हत्या और पिछली सारी मुसीबतों को याद करके क्रोध से आग की भांति प्रज्ज्वलित हो उठा। उस समय वह दोनों हाथों से गांडीव धनुष का प्रयोग कर रहा था। कौरव-सेना इससे भयाकुल हो उठी। उस समय वह कौरव-सेना को महाकाल के समान भयानक प्रतीत होने लगा।

जयद्रथ की रक्षा करने वाली सभी महारथियों को हराकर अर्जुन एकदम जयद्रथ के पास पहुंच गया और उस पर टूट पड़ा। पर जयद्रथ भी कोई साधारण वीर नहीं था। वह सुविख्यात योद्धा था। डटकर लड़ने लगा। उसे हराना अर्जुन के लिये भी सुगम न था। बड़ी देर तक युद्ध होता रहा। दोनों पक्षों के वीर सूर्य की ओर बार-बार देखने लगे। धीरे-धीरे पश्चिम में लालिमा छाने लगी और सूर्यास्त का समय भी नजदीक आने लगा; परन्तु जयद्रथ और अर्जुन का युद्ध समाप्त होने के कोई लक्षण नजर नहीं आते थे।

यह देख दुर्योधन के मन में आनंद की लहर उठने लगी। उसने सोचा कि अब जरा-सी देर और है। जयद्रथ तो बच ही गया और अर्जुन की प्रतिज्ञा विफल हुई ही-सी है।

दुर्योधन यह सोचकर खुश हो ही रहा था कि इतने में अंधेरा-सा छा गया। सूर्यास्त हो गया। पांडवों की सेना में उदासी छा गई। अब आपस में कानाफूसी करने लगे- "जयद्रथ मारा नहीं गया। सूर्यास्त हो गया। अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी न हो सकी! अब क्या होगा?"

उधर कौरव-सेना में खुशी की लहरें फैल गईं और सैनिक जहां-तहां शोर मचाने लगे।

जयद्रथ ने भी पश्चिम की ओर देखते हुए मन में कहा- "चलो, प्राण बचे!"

इसी बीच श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा- "अर्जुन! जयद्रथ सूर्य की तरफ देखने में लगा है और मन में समझ रहा है कि सूर्य डूब गया। परंतु अभी तो सूर्य डूबा नहीं है। यह अंधकार मेरा ही फैलाया हुआ है। अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का तुम्हारे लिये यही अवसर है।"

श्रीकृष्ण के ये वचन अर्जुन के कान में पड़े ही थे कि अर्जुन के गांडीव से एक तेज बाण छूटा और जयद्रथ के सिर को ऐसे उड़ा ले गया जैसे चील मुर्गी के बच्चे को उड़ा ले जाती है। पर श्रीकृष्ण ने समय पर ही एक और चेतावनी अर्जुन को दे दी थी-

"अर्जुन! जयद्रथ के सिर को जमीन पर न गिरने देना। बाण इस तरह मारना कि उसके सहारे ही वह आकाश-मार्ग से जाकर उसके पिता वृद्धक्षत्र की गोंद में जा गिरे। जयद्रथ को मिले वरदान की बात तुमको याद ही होगी कि जिसके हाथों इसका सिर पृथ्वी पर गिरेगा उसके सौ टुकड़े हो जायेंगे।"

अर्जुन ने ऐसा ही किया। जयद्रथ के पिता राजा वृद्धक्षत्र अपने आश्रम में बैठे संध्या कर रहे थे। इतने में काले-काले केश और सोने के कुंडलोंवाला जयद्रथ का सिर ध्यान-मग्न राजा की गोंद में जा गिरा। ध्यान समाप्त होने पर जब वृद्धक्षत्र की आंखें खुलीं और वह उठे तो जयद्रथ का सिर उनकी गोद से जमीन पर गिर पड़ा और उसी क्षण बूढ़े वृद्धक्षत्र के सिर के भी सौ टुकड़े हो गये। जयद्रथ और उसके वृद्ध पिता दोनों ही एक साथ वीरोचित स्वर्ग को सिधारे।

श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम और सात्यकि ने अपने-अपने शंख बजाकर विजय-घोष किया। पांडव-सेना के दूसरे वीरों ने भी शंख बजाये। यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने जान लिया कि अर्जुन के हाथों जयद्रथ का वध हो गया और उन सबके आनंद की सीमा न रही।

इसके बाद तो युधिष्ठिर दूने उत्साह के साथ, सारी पांडव-सेना को लेकर आचार्य द्रोण पर टूट पड़े। चौदहवें दिन का युद्ध केवल सूर्यास्त तक ही नहीं हुआ बल्कि रात को भी होता रहा। ज्यों-ज्यों युद्ध का जोश बढ़ता गया, त्यों-त्यों विधि-निषेध की सीमाएं एक-एक करके टूटती गईं। यहां तक कि अंत में अधर्म का बोलबाला हो गया।■

प्रभुदयाल मिश्र

ग्राम बर्माडांग, जिला टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में जन्म. सागर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. महर्षि महेश योगी के साथ आध्यात्मिक पुनरुत्थान आन्दोलन के सिलसिले में संपूर्ण भारत यात्रा. मध्य एशिया के तजाकिस्तान और उजवेगिस्तान गणराज्यों में गीता और भारतीय योग पर व्याख्यान. विभिन्न आध्यात्मिक एवं साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध. प्रकाशित कृतियां : सौंदर्यलहरी काव्यानुवाद, सबके लिए गीता, उत्तर पथ, मैत्रेयी, वेद की कविता (वैदिक सूक्तों का काव्यान्तर), वेद की कहानियाँ, तंत्र दृष्टि और सौन्दर्य सृष्टि, योग के सात आध्यात्मिक नियम, ईश्वर का घर है संसार. सम्मान : मध्यप्रदेश संस्कृत अकादेमी द्वारा 'व्यास सम्मान', मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा 'पुष्कर सम्मान', पेंग्वुन पब्लिशिंग हाउस द्वारा 'भारत एक्सीलेन्सी एवार्ड', वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् द्वारा 'महाकवि केशव सम्मान'. सम्प्रति : अध्यक्ष, महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्, भोपाल.

सम्पर्क : ३५, ईडन गार्डन, राजा भोज मार्ग, भोपाल-४६२०१६ ईमेल : prabhu.d.mishra@gmail.com, www.vishwatm.com

अस्यवामीय सूक्त

(ऋग्वेद मंडल-१ सूक्त १६४)

अवः परेण पितरं यो अस्या नुवेद पर एनावरेण
कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातं।१८।

जानता हो जो पिता
द्युलोक के नीचे
और ऊपर भूमि के सुस्थित
परम विद्वान्
इतना बता दे
कि देवता-सा मन
कहां उत्पन्न होता है!

ये अर्वान्वस्ताम् उ पराच आहुर्ये परान्वस्ताम् उ अर्वाच आहुः
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति।१९।

पास जो वह दूर कहलाता
तथा जो दूर है वह पास होता है
चक्र जो तुमने बनाया इन्द्र
अथवा सोम राजा ने समय का
खींचता वह अश्व-स्यंदन की तरह
संसार को जाता।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षम् परि षस्वजाते
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यन्श्ननन्यो अभि चाकशीति।२०।

मित्र दो पक्षी सुपर्णा
एक तरु शाखा
निकट बैठे परस्पर प्रीति से
चख रहा फल स्वाद पूर्वक एक
उनमें देखता पर दूसरा केवल
बिना खाए।

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भाग मनिमेषम् विदथाभिस्वरन्ति
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश।२१।

खग सुपर्णा सतत गाते अमृत रव नित्य
गीत जिसके
जगत का स्वामी
अखिल संसार का पोषक,
परम अति बुद्धिशाली
आन वह पैठा
यहां मुझमें
बहुत भीतर।

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वाग्रे तन्नोंनशद्यः पितरं न वेद।२२।

सुपर्णा खग पान करते मधुर रस
जिस वृक्ष पर रह
सृष्टि का निर्माण करते
शीर्ष में उसके लगे हैं फल मधुर
किन्तु जो पहचानता न उस पिता को
प्राप्त कर सकता उन्हें कैसे, कहीं!

यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद् वा त्रैष्टुभम् निरतक्षत
यद् वा जगज्जगत्याहितं पदम् य इत् तद् विदास्ते अमृतत्त्वमानाशुः।२३।

अवस्थित गायत्र गायत्री पर
त्रैष्टुभ बनाता त्रिष्टुभ
जगत पर जगती अवस्थित किस तरह
जो जानता
वह अमृत पा जाता!■

परेश दत्त द्वारी

संगीत-कलाकार। कृतियाँ गीत-गुंजन, तरुण-संगीत-गुंजन, संगीत-कला, सुर-संगीत, मसीह-संगीत-साधना तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। सर्वश्रेष्ठ-शिक्षक पुरस्कार, श्रेष्ठ-शिक्षक-पुरस्कार, बिरसा मुंडा-ज्योति-सम्मान एवं झारखण्ड-रत्न से सम्मानित। विश्व सेवा समिति, राँची द्वारा संगीत के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवाओं के लिये 'झारखण्ड सेवारत्न अवार्ड' से पुरस्कृत। सम्प्रति - संगीत-शिक्षक, हाई स्कूल, राँची, झारखण्ड।

सम्पर्क : pareshdutt@gmail.com

गीता-गीत

ज्ञान कर्म संन्यास योग

खंड-४

कृष्ण ने कहा परम सखा से मैंने ही इस योग को
कहा सूर्य से फिर मनु, राजा से आया इस लोक को।

बहुत काल तक लुप्त हो गया योग अछूती रही धरा
तू है मेरा परम-सखा सो बतलाया यह योग परा।

मैंने आज कहा जो तुमसे एक पुरातन योग वही
रखने योग्य रहस्य गुप्त है उत्तम तुमसे बात कही।

इस पर विस्मित होकर अर्जुन बोले यह कैसी है बात?
आप हुए हैं आज बताते आदिकल्प की ऐसी बात?

भगवन कहते अर्जुन! बहुत हुए हैं जनम तुम्हारे-मेरे
नहीं जानता है तू उनको मैं जानूँ वे सब फेरे।

मैं अविनाशी और अजन्मा सभी प्राणियों का ईश्वर
पर होता हूँ प्रगट योगमाया से प्रकृति अधीन कर।

वृद्धि पाप की होती जब-जब धर्मों पर होता संकट
निजस्वरुप रचकर तब जगसम्मुख हो जाता स्वयं प्रगट।

साधुजनों का हित पापी का नाश कराता हूँ तब मैं
धर्मस्थापना एक कार्य से युग-युग में आता हूँ मैं।

हे अर्जुन! जो तत्व जानकर मुझको कर लेता है ज्ञात
त्याग देह फिर जन्म को नहीं मुझको ही होता है प्राप्त।

कितने ही यों भक्त प्राप्त होते हैं मुझमें थिर होकर
मुझमें प्रेम अनन्य दिखाकर राग क्रोध भय को खोकर।

राग, क्रोध, भय को खोने वाले ऐसे बहुतेरे हैं
ज्ञानरूप से तपते जो पाते स्वरूप को मेरे हैं।

हे अर्जुन! जो भक्त ध्यान में हरदम मेरे रहता है
मैं भी उसको अपनाता वो मुझको प्यारा लगता है।

देवों के पूजन जो करते मानव निज-फल इच्छा से
कर्म सिद्धि मिल भी जाती उनको देवों की इच्छा से।

हे अर्जुन! सुन किया है मैंने चारों वर्णों का निर्माण
फिर भी मुझ अविनाशी को निर्लिप्त, अकर्ता ही तू जान।

कारण, कर्मों के फल में मेरी होती आसक्ति नहीं
कर्म-बंध मुझको ना बाँधे सुन जो मैंने बात कही।

क्रमशः

डॉ. सरोज अग्रवाल

एम.ए., पी.एच.डी. हिन्दी, पी.जी. डिप्लोमा (भाषा विज्ञान), अवकाश प्राप्त अध्यक्षा, हिन्दी एवं भाषा विज्ञान विभाग, उच्च शिक्षा एवं शोध संस्थान चेन्नई, केन्द्र के कोयला एवं एनर्जी मन्त्रालय में हिन्दी सलाहकार के रूप में सदस्या (१९८५-९३)। पिछले कुछ वर्षों से अमेरिका से प्रकाशित अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका 'विश्वा' में सह सम्पादक।

सम्पर्क : saroj_a@yahoo.com

मानव कभी दानव बन जाता

आज देश की स्थिति
ना जाने किस मोड़ पर आन खड़ी
बेहया और बेशर्मी की कोई
सीमा अब नहीं रही

कर्म-अकर्म का जब
मानव को रहता न ज्ञान
तभी अनागत के कुटिल चरण का
पा सकता नहीं कुछ भी भान

लूट पाट औ अनाचार ने
कैसा रंग जमाया
अपने ही हाथों
अपने मुख कालिख लगवाया

अरे बावले तुझे नहीं रहा
तनिक भी यह ज्ञान
अपनी ही माता का
मैं खुद करता हूँ अपमान

क्रूर दिमाग औ वहशीपन का
करते तुम ताण्डव नर्तन
अनाचार ने बस हद कर दी
डूब रही मद में तव गर्दन

नन्ही बालिका को नशा पिलाकर
कहीं बांधकर हाथ-पैर
कहीं तेजाब को छिड़क-छिड़क कर
बदला लिया उससे किस बैर

फिर भी संतुष्टि न पाकर
दिया अन्तड़ियों तक को चीर
सामूहिक बलात्कार का नग्न प्रदर्शन
हुई नहीं हृदय को पीर

रूह न कांपी ओ पापी
इतने पर भी न आया चैन
अपनी कालिख को छुपाने
कर दिया हाय उसका बलिदान

कहीं जला कर, कहीं तड़पा कर
अन्तड़ियों तक को न छोड़ा
ओ कायर मर्दानगी वाले
मस्तक में कैसा कीड़ा दौड़ा

स्वर्ग लोक उनको पहुँचा कर
तू हाय मद-मस्त हुआ
मुक्ति दिला कर नव कलिका को
तू तो है उन्मुक्त हुआ

कर्म और कर्म फल
क्या कभी भी पीछा छोड़ पायेंगे
अपनी ही अग्नि में जला कर
तुझे भस्म कर डालेंगे

हे ईश कैसी लीला यह तेरी
अनाचार का ताण्डव नर्तन
तूने ये क्या आंख मूंद ली
है किस माया के आवर्तन

आज यह उक्ति सार्थक सी लगती
यद्यपि उसका अस्तित्व नहीं
होता नंग बड़ा परमेश्वर से
क्या यह कोई विडम्बना नहीं।■

विनीता खंडेलवाल

इटारसी, मध्यप्रदेश में जन्म। देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर से जीव विज्ञान में स्नातक। न्यूट्रिशन एण्ड हेल्थ एजुकेशन में डिप्लोमा। बचपन से ही साहित्य की ओर रुझान। पठन-पाठन और लेखन में सतत सक्रिय।

सम्पर्क : vinitakhandelwal69@gmail.com

कविता

व्यक्तित्व

जिंदगी के टेढ़े-मेढ़े रास्तो में
कई बार ठहर के, कई बार ठिठक के
हमने देखा, हँसते और कसमसाते
कुछ, सज्जनों और दुर्जनों को
एक साथ, एक जगह
दोनों अपने-अपने संसार को
अपने-अपने हिसाब से
तौलते, तोड़ते और मरोड़ते
गर्व से अट्टाहास लगाते
तो कहीं अपने आप में खोए
दोनों एक साथ, एक जगह

कुछ जो उनमें सज्जन थे
थे कुछ समर्पित
अपने कर्त्तव्यों और जिम्मेदारियों को
शायद, कुछ निश्छल भी
जो पसंद नहीं कर पाए
दुनियाँ की लाग-लपेट
बेमतलब की दिखावटी बातें
और, नकाबों से ढँके चेहरों को
शायद कुछ भीरू भी
जो अपनी पहचान बनाने की
कसमसाहट को मूर्त रूप नहीं दे पाए
या शायद आत्मप्रवंचना के तीर
वे नहीं चला पाए
उनका अपना संसार था
कुछ और सज्जनों का
अपने तक सीमित
कुछ हँसते कुछ मुस्कुराते
वे चुप से खड़े थे
कुछ जो उनमे दुर्जन थे
थे बड़े गर्व से, अट्टाहास लगाते

अपने आप को, बाकी सबों से
श्रेष्ठ सा साबित करते
शायद अट्टहासों के पीछे छुपे थे
परत दर परत नकाब
कुटिल चालें और
चमचागिरी की अनोखी दास्तान
शायद, वो बड़े निडर थे
साम, दाम, दंड, भेद
यह मंत्र उन्होंने
समय रहते सीख लिया होगा
किसी को कुचलना
तो किसी को सहारा बनाना
उनका प्रिय शगल होगा —
शायद अपने सिद्ध मंत्र के अनुरूप
वे अपने आप को ढाल चुके होंगे।

बड़े ही गर्व से
अट्टहास लगाते वे दुर्जन
सज्जनता को नीचा दिखाते से
अठखेलियाँ कर रहे थे
हँस रहे थे।■

मञ्जूषा हांडा

हरिद्वार में जन्म। शिक्षा गुजरात और उड़ीसा में हुई। उड़ीसा इंजीनियरिंग कॉलेज से कंप्यूटर विज्ञान में इंजीनियरिंग की उपाधि प्राप्त की। पढ़ाई पूरी करने के बाद अमेरिका पहुँचीं। लिखने-पढ़ने में रुचि के साथ ही चित्रकारी भी करती हैं। सम्प्रति - कैलिफोर्निया में सॉफ्टवेयर इंजीनियर के तौर पर कार्यरत।

सम्पर्क : mxhanda@gmail.com

फरिश्ते

घर के नन्हे, बड़े ही चुलबुले
शैतानी भरी, नस नस में इनके!
मचाते हर वक्त, ऊधम तूफ़ान
पर प्रिय सबको, इनमें बसती सबकी जान!

इन्हें गर्व बड़ा, अपनी बदमाशियों पर
बड़े जान लें, सीधा-सादा मकसद इनका
इनकी इच्छा, खुशियाँ फैलाएं चारों ओर
चाहे भई सांझ, दोपहर या फिर भोर!

ये जो रूठें, जान लो शामत अब सबकी आई
इनकी अप्रसन्नता, घर आँगन में आफत लाई!
लाल-पीली आँखें इनकी, नाक पे बैठा इनके गुस्सा
दरअसल अन्दर से ये मोम, बाहर का हठ सब झूठा!

सबका ध्यान हो इन पर केन्द्रित, ऐसी इनकी मंशा
सबको आकृष्ट किए बिना, सुकून इन्हें ना मिलता
थोड़ा लाड़, ढेर प्यार, इन्हें शांत करने का यही इलाज
भलाई सबकी इसी में, रहें इनके दुरुस्त मिज़ाज!

ओ नन्हे मेरे फरिश्ते, तुझसे है दिल का रिश्ता
तुझसे ही ज़िन्दगी है, इन साँसों के चलने का, तुझसे नाता
नाज़ुक से फूल मेरे, तुझसे बहार इस चमन में
खुशबू से तेरी महके, यह गुलिस्तां हर मौसम में

दुआ यह मेरे रब से, मासूमियत तेरी संजोके
संतुष्ट जीवन की धारा, बरकरार यूँ ही रखे
ओ नन्ही मेरी परी तुम, आई हो तुम जहां से
है झिलमिल सितारों का आँगन, प्रेम बटोरा तुमने वहाँ से

रिमझिम बरसती उदारता, लाई हो तुम वहाँ से
अनुराग का प्रतिबिम्ब बनकर, आई हो तुम वहाँ से
मेरे होंठों पर मुस्कान बिखेरे, है यह बहार तुम्ही से
संवरते इस जीवन में, करुणा की परिकाष्ठा तुम्हीं से।

■

श्रीमती आशा मोर

जन्म : २५ अक्टूबर १९६० में झाँसी, उ.प्र.। शिक्षा : बी.एस-सी.। २००२ में ट्रिनिडाड अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन तथा २००३ में सूरीनाम में सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लिया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। सम्प्रति : मैनेजिंग डायरेक्टर सेन्ट क्लैएर, एम.आर.आई. सेन्टर, ट्रिनिडाड और टोबेगो।

सम्पर्क : asha.mor1@gmail.com

कविता

टेसू का पुष्प

किया गुलाब ने क्यों सदा
सब फूलों पर राज
किया किसी ने न कभी
क्यों टेसू पर नाज

सौन्दर्य प्रतिभा टेसू की कमतर नहीं गुलाब से
मौलिकता भी उसकी कुछ कम नहीं गुलाब से
फिर भी करता रहा गुलाब सब फूलों पर राज
किया किसी ने न कभी क्यों टेसू पर नाज

रस निचोड़ टेसू ने अपना प्रेमिका को रंगीन किया
क्यों गुलाब को ही कहे प्यार का प्रतीक सारी दुनिया
बिन गुलाब न होता पूरा अब भी कोई काज
किया किसी ने न कभी क्यों टेसू पर नाज

श्रीकृष्ण ने भी द्वापर में खेली होली टेसू से
भीग गये सखियों के आँचल मदभरी मस्ती से
बरसाने के लोकगीत वो होली याद दिलायें आज
किया किसी ने न कभी क्यों टेसू पर नाज

होली के बाद न फिर मुड़ के देखा टेसू को
क्यों भुला दिया यूँ होली के इस राजा शिरोमणि को
चलो बर्ष भर बाद आ गयी है फिर होली आज
आओ कर लें आज हम अपने टेसू पर नाज

किया गुलाब ने क्यों सदा सब फूलों पर राज
किया किसी ने न कभी क्यों टेसू पर नाज।

■

शकुन्तला बहादुर

अनंतचतुर्दशी १९३४ को लखनऊ में जन्म. एम.ए. (संस्कृत) में सर्वाधिक अंकों का पदक हासिल किया. जर्मन एकेडेमिक एक्सचेंज सर्विस की फ़ेलोशिप पर जर्मनी में दो वर्षों तक शोधकार्य. ट्यूबिंगेन विश्वविद्यालय में ही संस्कृत एवं हिन्दी का अध्यापन. महिला महाविद्यालय लखनऊ में संस्कृत प्रवक्ता. विभागाध्यक्ष एवं प्रधानाचार्या के पदों पर कुल ३६ वर्षों तक कार्य करते हुए सेवानिवृत्त. योरोप तथा अमेरिका की साहित्यिक-गोष्ठियों में भाग लेते हुए अनेक देशों का भ्रमण. विगत १५ वर्षों से कैलिफ़ोर्निया, अमेरिका में निवास. प्रकाशित कृतियाँ : 'मृगतृष्णा' एवं 'बिखरी पंखुरियाँ' - काव्यसंग्रह, 'विविधा' - ललित निबन्ध-संग्रह, 'सुधियों की लहरें' - लेख एवं संस्मरण. सम्पर्क : shakunbahadur@yahoo.com

बसन्त-गीत

सखि बसन्त आ गया
सबके मन भा गया
धरती पर छा गया
सुषमा बिखरा गया

आमों में बौर लदे
कुहू-कुहू भली लगे
बागों में फूल खिले
भौंरे हैं झूम चले

मन्द-मन्द पवन चली
मन की है कली खिली
शिशिर शीत भाग गया
सुखद बसन्त आ गया

ख़ुशियाँ बरसा गया
सखि बसन्त आ गया।

■

होली-लोकगीत

सखि, होली ने धूम मचाई
महिनवा फागुन का।
देखो झूम-झूम नाचे है मनवा
महिनवा फागुन का।।

हरे-हरे खेतवा में पीली-पीली सरसों
टेसू का रंग नहीं छूटेगा बरसों
आज धरती का नूतन सिंगार
महिनवा फागुन का।। सखि....

अबीर-गुलाल की धूम मची है
रंगों की कैसी फुहार चली है
तन रंग गयो, हाँ मन रंग गयो मोरा साँवरिया
महिनवा फागुन का।। सखि....

कान्हा के हाथ कनक पिचकारी
राधा के हाथ सोहे रंगों की थारी
होरी खेल रहे हाँ, होली खेल रहे बाल-गोपाल
महिनवा फागुन का।। सखि....

बैर-भाव की होली जली है
गाती बजाती ये टोली चली है
सखि प्रेम-रंग हाँ, देखो प्रेम-रंग बरसे अँगनवा
महिनवा फागुन का।। सखि....

■

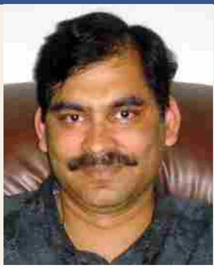

उमेश ताम्बी

जन्म, नागपुर के समीप तुमसर शहर में उद्योगी परिवार में हुआ. नागपुर विश्वविद्यालय से १९८७ की प्रावीण्य सूची में अभियांत्रिकी स्नातक में प्रथम स्थान पाया, १९८९ में एडमिनिस्ट्रेशन में स्नातकोत्तर. १९९९ तक स्वयं के उद्योग-व्यवसाय में भारत में सफलता पाने के बाद अमेरिका पहुँचे. साफ्टवेयर के क्षेत्र में कार्यरत हैं. फिलाडेल्फिया के पास परिवार के साथ रहते हैं. हिंदी भाषा के प्रति अटूट प्रेम, बचपन से ही हास्य और व्यंग्य कविताओं के प्रति रुचि रही है. कुछ समय से अनुभव और विचारों को साहित्य और काव्य का रूप देने का प्रयास शुरू किया है.

सम्पर्क : फिलाडेल्फिया, यू.एस.ए. ईमेल : umesh.tambi@gmail.com

कविता

तेल लगाओ या गाना गाओ

तेल लगाओ या गाना गाओ
बुद्धिजीवियों अब तो जागृत हो जाओ

राजनैतिक पार्टियों में समन्वय, सदभाव
गुंटूर की मिर्च का छिड़काव
लोकसभा के अंदर भगदड़ और बचाव
कूटनीति का अद्‌भूत प्रभाव

वैलंटाइन है त्यौहार न ख़ुशी
केवल नुमाइश और नवयुवकों की हंसी
गरीब जनता मझधार में फँसी
ये डेमोक्रेसी है या रस्साकसी?

राम की भी जय, रावण की भी जय
हीरा गले लग जाये तो हार बन जाए
नीचे उतर जाए तो गला चिर जाए
देश चाहे दर किनार हो जाय

मेरा गाना न तेरा गाना
कांग्रेस और बीजेपी का एक ही तराना
न तेल न गाना
कैसे बने तेलंगाना?

उनपचास दिनों का ड्रामा
केजरीवाल का राजीनामा
जनलोकपाल बिल रहा न अंजाना
शायद बन पाये राष्ट्रीय हंगामा?

■

हिमालय, हमारे आलय में

जब पड़ी अलास्का में गर्मी
अमेरिका में बहुधा भीषण नरमी
बाहर निकलने में शर्मा-शर्मी
हाथ सेंक रहे नेता और कुशल कर्मी

आपातकालीन स्थिति का प्रभाव
अवरुद्ध हुआ बिजली का प्रवाह
रास्तों पर नमक का छिड़काव
आग जलाव और जीवन बचाव

बर्फ़ से हताहत है यातायात
पेड़ों ने कहर ढाया अकस्मात
लाखों ने बिताई ठिठुर-ठिठुर के रात
निसर्ग और मौसम की सौगात

हिमपात ही हिमपात
साथ में बर्फीली बरसात
तेज हवा तूफान के साथ
ये चक्रवात है, या वज्रपात?

■

ललिता प्रदीप
गोंडा, उत्तरप्रदेश में जन्म। लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए.। उत्तरप्रदेश की प्रशासनिक सेवा की अधिकारी। कविता लिखने के अलावा यात्रा एवं फोटोग्राफी में विशेष रुचि। सम्प्रति - जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, लखनऊ में प्राचार्य।
सम्पर्क : lalitapradeep@yahoo.com

मेरा होना तुम्हारे होने से ही है

मैंने कब चाहा था कि मेरी दुनिया
तुम्हारी दुनिया से भिन्न हो
मैंने कब तमन्ना की थी कि
तुम मुझे इतना भरोसा दो कि
मैं बिलकुल स्वतंत्र हो जाऊं
मैंने कब चाहा था कि
मेरे फैसलों को तुम्हारी जरूरत न हो

अच्छा लगता है मुझे
जब कहीं जाते हुए मुझे
फिक्र नहीं करनी होती
कि टिकट कहाँ है, कब का है
कहाँ रुकना है, कहाँ ठहरना है
मैं तो बस तुम्हारी स्त्री की तरह
तुम्हारे पीछे-पीछे चलना चाहती हूँ

मुझे नहीं करना होता है
अपने दोस्तों से दिखावा कि
मैं बहुत स्वतंत्र हूँ
रात बिरात कहीं भी जाऊं
मेरे घर में मजाल किसी की
जो मुझसे, मुझसे
सवालिया निगाह भी मिलाये

मेरे लिए यदा-कदा
पूजा में तुम्हारे साथ बैठ जाना
सुबह उठकर
अम्मा बाबूजी के पाँव छूकर
तुम्हारे साथ आशीर्वाद लेना
कभी-कभार सुबह की चाय
साथ पी लेना

शादी-ब्याह में तुम्हारे साथ
रिश्तेदारी में जाना
शादी की सालगिरह पर
ननदों की चुटकियों पर शरमा जाना
तुम्हारा कभी कभार
कोई गिफ्ट ले आना
स्कूल के लिए बच्चों को तैयार कर देना
उनकी छोटी उपलब्धियों पर
खुद पर गर्व कर लेना
तुम्हारे साथ
छोटी-मोटी खरीददारी पर
खुश हो जाना
ऐसे न जाने कितने
अनगिनत क्षण हैं
शायद मैं तुम्हे गिना नहीं सकती
जो मुझे जिंदा ही नहीं रखते
वे मेरे जीने और न जीने के मानदंड हैं

मेरे लिए
तुम्हारा प्यार, तुम्हारा सहारा ही
जीने के लिए सब कुछ है
मेरा भला तुमसे अलग
क्या कोई वज़ूद है?
अगर कोई कहता है कि है
या तुम सोचते हो कि है
तो ऐसा मानना, ऐसा सोचना
मेरे जिंदा रहने की वजह
नहीं बनता
क्योंकि बस तुम हो
मेरे खुश रहने की वजह
और तुम्हारी एक मुस्कान
मेरे पूरे अस्तित्व के होने की
एकलौती वजह है। ■

नीलम दीक्षित

३० सितंबर, १९६८ को बस्ती, उ.प्र. में जन्म। कुलभास्कर आश्रम महाविद्यालय, इलाहाबाद से विज्ञान स्नातक। आकाशवाणी, दूरदर्शन से रचनाओं का प्रसारण। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताओं का प्रकाशन। अनेक साहित्यिक, सामाजिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित। संप्रति- स्वतंत्र लेखन।

संपर्क : ५/१०७ विनय खंड, गोमती नगर, लखनऊ-२२६०१० ईमेल : n.dixit@rediffmail.com

कविता

विदा करो कुछ प्रेम-छेम से

जाने-अनजाने सुख-दुख चलते
संग न जाने कितने अपने
कितने पल कुछ अंकित हो
थम जाते हैं, तड़पाते हैं
होठों की मधु से भी मीठी छुअन
नयन की स्वप्निल आशा
बालों में रह-रहकर
उंगली की थिरकन
साँसों के गर्मी की गाथा
अरे कहाँ यह चित्र दिखाई फिर देगा!

अरे उतरकर आँखों से यह बह जाएगा
विदा करो कुछ प्रेम छेम से।

शब्दों में, छंदों में सुख-दुख
बाँट जाते हैं कितने अपने
आलिंगन में थमें-थमें क्षण
रह जाते हैं जाने कितने
कितने ही पग रुके-रुके से
तय कर लेते हैं मंजिल को
कितने स्वप्न अधूरे से
बातों में कर लेते हैं पूरा
अरे उलाहने कहाँ रहेंगे!
फिर मिलने, न मिल पाने के

टीस उठेगी हृदय बिखर कर रह जाएगा
विदा करो कुछ प्रेम-छेम से।

कुछ देने कुछ पाने की बातें छोटी हैं
रहूँ शिखर पर, उड़ूँ गगन में
सब अभिलाषाएँ झूठी हैं
एक लक्ष्य था
सबको जीवनमय कर दूँ
जीवन से भर दूँ
करे माफ हर कड़ी
जुड़ी जो मुझसे
जुड़कर दुखी हुई!
करो विदा मैं प्रेम सुधा

फिर-फिर बरसूँ सावन बनकर
विदा करो कुछ प्रेम-छेम से।
■

नीरज कुमार 'नीर'

१४ फरवरी १९७३ को जन्म। ब्लॉग 'काव्यसुधा' www.kavineeraj.blogspot.com पर नियमित लिखते हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। सम्प्रति - केंद्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क विभाग, राँची में सेवारत।

सम्पर्क : email : neerajcex@gmail.com

सुख का सूरज

धुप खिले तो
पसार दूँ आंसुओं से
भींगी चादर
सूखने के लिए
बहुत दिनों से
निकला नहीं सूरज।

■

काला रंग

अगर तुम पढ़ पाते
मन की भाषा तो
जान पाते
मेरे अंतर के भाव को

तुम समझ पाते
उस बात को
जो मैं कह न सका
तुम देखते हो काला रंग
पर नहीं देख पाते
उसमे छुपे रंगों के इन्द्रधनुष को
जो काला है, उसमें
समाहित है सभी रंग

कभी परदे हटाकर देखो
दिखेगा सत्य
सत्य चमकीला होता है
चुंधियाता हुआ।

■

अरविन्द कुमार पाठक

अन्धारी, भाया खुटहा, जिला भोजपुर, बिहार में जन्म। संस्कृत में मध्यमा के अलावा मगध विवि से भौतिकी ऑनर्स में स्नातक एवं लोक प्रशासन में स्नातकोत्तर की डिग्रियाँ। नामी पत्रिकाओं में आलेखों के प्रकाशन। कादम्बिनी के मतांतर स्तम्भ के लिए नियमित लेखन। सम्प्रति : ग्रेसिम इंडस्ट्रीज लिमिटेड में सहायक प्रबंधक।

सम्पर्क : ७/६, ग्रेसिम स्टॉफ कॉलोनी, बिरलाग्राम, नागदा, उज्जैन, म.प्र. ईमेल- arvind.pathak@adityabirla.com

कविता

एक दिन चहक जा आकर गौरैया

छोटा सा पंख और छोटी सी काया
सुख का सपना न दुख का है साया
मनहर और मनोहर रूप है भाई
पर न जाने किसको मैं नही भायी।

चुंगती हू दाना और पीती हूं पानी
नन्ही सी जान की यही है कहानी.
घर में चहकना आँगन में फुदकना
हाय क्या हो गया इसका इठलाना।

टूटे हैं न पंख न टूटी है खटिया
पर सूना है आँगन और सूनी बगिया.
रूठा है साजन और रूठी मेरी मैया
एक दिन चहक जा आकर गौरैया।

■

नीरज गोस्वामी

अगस्त १९५० को जम्मू में जन्म। अंतरजाल की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित। पेशे से इंजीनियर। अनेक विदेश यात्राएं कर चुके हैं। सम्प्रति - भूषण स्टील मुंबई में वाइस प्रेसिडेंट के पद पर कार्यरत.

सम्पर्क : neeraj1950@gmail.com

कुछ हँस के गुज़ार आये कुछ रो के गुज़ार आये

मोहब्बत का ज़ज्बा जगा कर के देखो
कभी दिल को तुम दिल बना कर के देखो
हो तुम भी तभी तक, कि जब तक कि हम हैं
न मानो तो हमको मिटाकर के देखो
भुलाना हमें इतना आसाँ नहीं है
है आसाँ तो हमको भुला कर के देखो

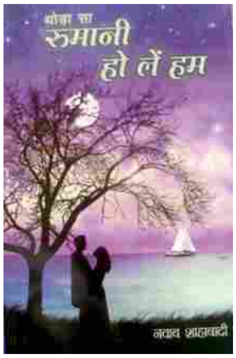

ऐसे बाकमाल शेर कहने वाले शायर को कौन भुला सकता है? शीरीं ज़बान में ऐसे रोमांटिक शेर कहने वाले अनूठे शायर हैं डॉ. ए.के. श्रीवास्तव उर्फ़ नवाब शाहाबादी साहब। इनकी किताब 'थोड़ा-सा रूमानी हो लें हम' में लगभग एक सौ अस्सी लाजवाब ग़ज़लें संकलित हैं। ज़िन्दगी की तल्खियों ने शायरी की जबान को भी तल्ख़ कर दिया है। ये किताब कुछ हद तक उस तल्खी को दूर कर आपकी रूह को सुकून पहुंचाने का काम करती है।

मज़हब की इन किताबों ने आखिर दिया है क्या
एक बार पढ़ के प्यार का अफ़साना देखिये

नवाब शाहाबादी साहब पेशे से डाक्टर हैं। जनाब इब्राहिम 'अश्क' साहब फरमाते हैं 'नवाब साहब ऐसे शायर हैं जो वक्त पड़ने पर सबके काम आते हैं। जो शख्स सबके काम आता है उसका मज़हब इंसानियत होता है।' ये इंसानियत उनकी पूरी शायरी में नज़र आती है।

आये तो गुलिस्तां में कुछ ऐसी बहार आये
फूलों को सुकूं आये काँटों को करार आये
लोगों ने गुज़ारी है, जैसी भी वहां गुज़री
कुछ हँस के गुज़ार आये कुछ रो के गुज़ार आये
'नव्वाब' कहीं सदमा पहुंचे न कोई उनको
हम जीती हुई बाज़ी ये सोच के हार आये

काटों के करार और जानबूझ के बाज़ी हारने की बातें करने वाले शायर किस कदर इंसानियत से भरे होंगे इसका अंदाज़ा लगाना मुश्किल नहीं है।

किसे देखने को हैं बेताब आँखें
जो खुलने लगी खिड़कियाँ धीरे-धीरे
जो मौजों के तेवर से वाकिफ़ नहीं हैं
डुबों देंगे वो कश्तियाँ धीरे-धीरे
बड़ा प्यार आया जो बालों पे मेरे
फिराने लगे उँगलियाँ धीरे-धीरे

इस किताब को राजेश राज जी ने संकलित किया है और 'डायमंड पाकेट बुक्स' ने बहुत आकर्षक कलेवर के साथ छापा है।

उस सितम को सितम नहीं कहते
जो सितम बार-बार होता है
कोई हँसता है सुन के हाले ग़म
और कोई अश्क बार होता है
हाथ डालें जरा संभल के आप
फूल के पास खार होता है

फूल के पास भले ही खार होता हो लेकिन नवाब साहब की शायरी तो उस फूल की तरह है जिसमें रंग है खुशबू है और खार अगर कहीं है भी तो बहुत दूर है। आपको यदि उनकी शायरी की बानगी पसंद आई है तो आप बराए मेहरबानी नवाब साहब को, जो रायबरेली रोड, लखनऊ के निवासी हैं, उनके मोबाईल ०९८३९२२१६१४ या ०५२२-२४४२१२१ पर बात करके मुबारकबाद तो दे ही सकते हैं।

> बकौल नवाब साहब 'कल-कल करते झरनों का संगीत, नीले आकाश में उड़ते हुए बादल, सुरमई साँझ, लहरों का गीत, कलरव करते पक्षी, मुस्कुराती हुई कलियाँ, अमराई की गंध, ओस में नहाई चांदनी आदि कितने बिम्ब मूड को बदल देते हैं। तल्खियाँ कम हो जाती हैं और मन ऐसे वातावरण में चला जाता है जहाँ आनंद की अनूभूति होती है।'

कुछ तो शरीके इश्क़की नाकामियाँ भी थीं
कुछ हाले-नामुराद ने शायर बना दिया
तुम कोशिशों के बाद भी शायर न बन सके
हमको तुम्हारी याद ने शायर बना दिया
करता अदा हूँ शुक्र तुम्हारा मैं दोस्तों
मुझको तुम्हारी दाद ने शायर बना दिया■

सदैव की ही तरह फरवरी-२०१४ अंक की भी सभी रचनाएँ तथा स्थायी स्तम्भ चावपूर्ण हैं। सभी कवितायें मन को भा गईं। 'अपनी बात' और 'आखिरी बात' दोनों ही पसंद आईं। 'रम्य रचना' एक अच्छी हास्य-व्यंग्य रचना है ।

आशा मोर
ट्रिनिडाड-टोबेगो

गर्भनाल का फरवरी-२०१४ अंक ८७ को अभी-अभी डाउनलोड किया है। पठनीय सामग्री के व्यवस्थित संकलन के लिए हार्दिक धन्यवाद।

सौरभ

गर्भनाल का फरवरी-२०१४ अंक भेजने के लिए धन्यवाद। सदा की भांति इस अंक में भी अच्छी पठनीय सामग्री है। शुभकामनाओं सहित।

दिनेश श्रीवास्तव
ऑस्ट्रेलिया

'गर्भनाल' का नवीनतम अंक प्राप्त करके मन प्रफुल्लित हो गया। सदा की भाँति उच्च कोटि के विचारणीय गम्भीर विषयों पर सार्थक एवं प्रभावी आलेखों के साथ ही सभी स्थायी स्तम्भ भी पठनीय और रोचक हैं, जिनसे पत्रिका के अगले अंक के प्रति निरन्तर उत्सुकता बनी रहती है।

कविताओं की प्रस्तुति सुन्दर और सराहनीय है। विविधता को लिये हुए सम्पूर्ण पत्रिका स्तरीय है, जिसका श्रेय सम्पादक मंडल को जाता है। पत्रिका का हर अंक सँजोने योग्य रहता है। हार्दिक-बधाई।

शकुन्तला बहादुर
कैलिफ़ोर्निया

60 MILLION
CHILDREN IN INDIA
have no means to go to school

Contribute just Rs. 2750*

and send one child to school

for a whole year

Central & General Query

info@smilefoundationindia.org

http://www.smilefoundationindia.org/contactus.htm

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

औघड़ उवाच - जैसे समन्दर में लहरें आती हैं - जाती हैं, ठीक वैसे ही मन में विचारों की तरंगें उठती हैं। स्थिरता की तलाश में मन सदा ही अस्थिर बना रहता है।

चेला - स्थिरता से मतलब ?

औघड़ - स्थिरता मन का कृत्रिम भाव-बोध है।

चेला - इसे निश्चिंतता समझें ?

औघड़ - तुम इसे यथास्थितिवाद मान सकते हो।

चेला - गुरूजी, एक म्यान में दो तलवारें क्यों घुसा रहे हैं। स्थिरता और यथास्थितिवाद दो अलग-अलग तथ्य हैं।

औघड़- ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। स्थिरता मन की चाह है और यथास्थितिवाद बाहर की स्थितियों को मनमाफिक बनाये रखने की कवायद को कहा जा सकता है। इसीलिये तो किसी भी किस्म के बदलाव पर मन भावुक हो उठता है। मन कभी भी सुविधाजनक स्थितियों में बदलाव नहीं चाहता। जबकि परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है और यहीं द्वन्द्व पैदा हो है।

चेला - याने आप कह रहे हैं कि सारी स्थितियां हमारी सहूलियत को बनाये रखने के लिये बदलती जायें और हम किसी के लिये रत्तीभर भी न बदलें। यह तो सत्ता के शिखर पर कब्जा जमाये लोगों की भाषा है। वे खुद की स्थिरता चाहते हैं। पद-प्रतिष्ठा बनी रहे, जय-जयकार होती रहे, चमचों में रसमलाई बँटती रहे, गलीचों पर जजमान लोटते रहें, भोग-प्रसादी के लिये माल-असबाब की आमद बनी रहे। किसी भी कीमत पर यह झाँकी स्थिर रहे, यही तो है स्थिरता। न हो तो इसे देश की अखण्डता, संप्रभुता से जोड़ दीजिये बात का वजन और बढ़ जायेगा। और जाहिर है कि ऐसी स्थिरता को बनाये रखने के लिये दूसरों को धीरज के साथ यथास्थितिवाद में रखना होगा। यथास्थितिवाद का एक पहलू यह भी है कि स्थिति जैसी भी है, जिस दशा को भी प्राप्त है उसे वहीं और वैसा ही बनाये रखो। जनता को समझाओ कि आप कष्ट में हैं तो थोड़ी देर और कष्ट को सहन करते रहो। हम अभी आकर देखते हैं, बस आ ही रहे हैं। इस बीच इंतज़ार करते लोगों में यकीन की गोली बाँटो। उनके बीच थोड़ी-थोड़ी देर में क्रांति की सुरसुरी पैदा करती बातें फैलाते रहो। और कुछ समझ न आये तो लाउडस्पीकर पर 'हम लाये हैं तूफान से कस्ती निकाल के' वाला कैसेट ही चला दो। एक पैर पर इंतज़ार में खड़े लोगों के कान में फुसफुसाओ कि बस कष्ट की यह स्थिति बदलने ही वाली है। वे अभी आयेंगे और लगभग जादू की झड़ी घुमाकर हम सभी को कष्टों से निजात दिला देंगे। यह बात इतने यकीन से कहो कि स्वप्न और सच्चाई का भेद मिट जाये। लोगों को लगने लगे कि हाँ बदलाव की बयार ज़रूर आयेगी। बस आने ही वाली है, बल्कि भीड़ में खड़े कुछ अपने ही गुर्गों से कहो कि उनके चेहरों पर बदलती तस्वीर का आस्वाद टपकता दिखाई देने लगे। हुआँ-हुआँ करती भीड़ चेहरों के चमत्कार में तुरत मगन हो जाती है। चमत्कारों को नमस्कार करने में भीड़ की गहरी आस्था है और यह हजारों दफे का आजमाया हुआ जगजाहिर टोटका है। फिलहाल हम अपने जनानखाने में आराम फरमा रहे हैं और यहां से जैसे ही फारिग होंगे, आपकी यथास्थिति को बदलने में जुट जायेंगे। तब तक भीड़ के मन में सच्चाई का भ्रम बना रहे सो नया जमाना फिल्म का गीत लाउडस्पीकर पर चला दो :

कितने दिन आँखें तरसेंगी / कितने दिन यूँ दिल तरसेंगे
एक दिन तो बादल बरसेंगे / ऐ मेरे प्यासे दिल
आज नहीं तो कल महकेगी / ख्वाबों की महफ़िल
सूने सूने से मुरझाये से हैं क्यूँ उम्मीदों के चेहरे / काँटों के सर पे ही बाँधे जायेंगे फूलों के सेहरे
ज़िंदगी पे सबका एक-सा हक़ हैं, सब तस्लीम करेंगे / सारी खुशियाँ सारे दर्द बराबर हम तक़सीम करेंगे
नया ज़माना आयेगा, नया ज़माना आयेगा...

atmaram.sharma@gmail.com